Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

* ओ३म् *

मुण्डकोपनिषद्

का

प्रश्नोत्तर की रीति से व्याख्या सहित

हिन्दी अनुवाद ।

अनुवादक—

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी

न्याय दर्शन, वैशेषिक दर्शन, सांख्य दर्शन,
वेदान्त दर्शन और उपनिषद् आदि और छोटे२
सैंकड़ों ट्रैक्ट आदि पुस्तकों के लेखक ।

प्रकाशक—

वज़ीरचन्द्र शर्मा—अध्यक्ष

वैदिक पुस्तकालय मोहनलाल रोड, लाहौर ।

आर्य्य सम्वत् १९७२९४९०३१ दया० १०७

सम्वत् १९८८ वि० १ दिसम्बर सन् १९३१

मैनेजर शरत्चन्द्र लखनपाल के प्रबन्ध से
बाम्बे मैशीन प्रेस मोहनलाल रोड लाहौर में छपा ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

* ओ३म् *

मुण्डकोपनिषद्

का

हिन्दी अनुवाद

मंत्र—ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता । स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्यां प्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठ पुत्राय प्राह ॥ १ ॥

शब्दार्थ—ब्रह्मा=चारों वेदों का ज्ञाता धर्म, ज्ञान और वैराग्य से युक्त । देवानां=विद्वानों में । प्रथमः=प्रथम । सम्भूव=भद्र किया, पैदा हुआ । विश्वस्य=जगत में धर्म के । कर्ता=करने वाले अर्थात् प्रत्येक वर्णाश्रम के नियम बनाने वाले । भुवनस्यगोप्ता=सर्व प्राणियों की रक्षा का उपदेश दाता । स=उसने । ब्रह्मविद्या=ब्रह्मविद्या को । सर्वविद्या प्रतिष्ठाम=सर्व विद्याओं के ठहरने के स्थान । अथर्वाय=अथर्व को । ज्येष्ठपुत्राय=जो उनका बड़ा बेटा था । प्राह=उपदेश किया ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अर्थ—ब्रह्मा सर्व विद्वानों में प्रथम कहलाता है अर्थात् ऋषियों से बड़ी पदवी ब्रह्मा की है, क्योंकि चारों वेदों के जानने से ब्रह्मा कहलाता है, जैसा कि गायत्री उपनिषद् में लिखा है कि वेदों से ब्रह्मा होता है। जो प्रथम ब्रह्मा हुआ उसने संसार के अर्थ वर्णाश्रम के विभाग के अनुकूल नियम बनाये और उन नियमों के द्वारा प्रत्येक प्राणी की रक्षा की। उसने सब से ज्येष्ठ पुत्र अथर्व नामी को ब्रह्मविद्या का उपदेश किया।

प्रश्न—यह क्यों न माना जावे, सब से प्रथम ब्रह्मा उत्पन्न हुआ। ब्रह्मा पदवी सब से प्रथम क्यों स्वीकार की जावे।

उत्तर—शतपथ, गोपथ और ऐत्तरीय ब्राह्मण में अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा को परमात्मा का वेद उपदेश करना लिखा है। और गायत्री उपनिषद् में ब्रह्मा का वेदों से बनना लिखा है, जिससे स्पष्ट है कि ब्रह्मा से पूर्व वेद, अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा के द्वारा प्रकाशित हुए। और उन ऋषियों से ब्रह्मा ने पढ़े। और चारों वेदों के जानने से सब से बड़ा अर्थात् प्रथम कहलाया।

प्रश्न—ब्रह्मविद्या का अथर्व से सम्बंध क्यों बताया?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उत्तर—ऋग्, यजुः, सामवेद तो यज्ञ के अर्थ हैं और ब्रह्मविद्या के अर्थ अथर्व ही काम आता है।

प्रश्न—ब्रह्म को जगत का कर्ता क्यों न स्वीकार किया जावे, जैसाकि शब्दार्थ से प्रकट होता है।

उत्तर—ब्रह्मा का संसार में जन्म हुआ, इस लिये संसार में सम्मिलित है। इस कारण यह जगत् कर्त्ता नहीं हो सकता।

मंत्र—अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्माऽथर्वा तां पुरोवाचाङ्गिरे ब्रह्मविद्याम्। स भारद्वाजाय सत्यवाहाय प्राह भारद्वाजो अंगिरसे परावराम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ—अथर्वण=अथर्वण शिष्य को। यां=जिस ब्रह्म विद्या को। प्रवदेत=बताया था। ब्रह्मा=ब्रह्मा ने। अथर्वा=अथर्वा ने। ताम्=उस ब्रह्म विद्या को। अङ्गिरे=अङ्गिर शिष्य को पढ़ाया। पुरोवाच=अन्य शिष्यों को भी उपदेश किया। स=उस अंगिर ने। भारद्वाजाय=भारद्वाज ऋषि गोत्र वाले। सत्यवाहाय=सत्यवाह शिष्य को। प्राह=उपदेश किया। भारद्वाजो=उस भारद्वाज ने। अंगिरिसा=अंगिरा शिष्य को। परावराम=दूसरों से प्राप्त की हुई ब्रह्म विद्या को पढ़ाया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अर्थ—अथर्ववेद से ग्रहण की हुई मुण्डकोपनिषद नामी ब्रह्मविद्या जो ब्रह्मा ने अथर्व को पढ़ाई थी, अब उस क्रम को बताते हैं कि अथर्व ने उसको अङ्गी नाम अपने शिष्य को पढ़ाया। और अङ्गी ने भारद्वाज गोत्र में उत्पन्न हुए सत्यवाह ऋषि को पढ़ाया। उसने अङ्गिरस नामी ऋषि को दूसरे गुरुओं से प्राप्त की हुई ब्रह्मविद्या को पढ़ाया। इस इतिहास से ब्रह्मविद्या का अनादि काल से होना सिद्ध होता है। और वर्तमान काल के यूरुपवासी मनुष्य आरम्भ में अविद्य को स्वीकार कर बैठे हैं। इन दोनों में से कौन सत्य है? इसके विषय में किसी युक्ति की आवश्यकता नहीं; जिसकी साक्षी ईश्वरीय नियम के अनुकूल है। ईश्वर ने प्रथम सूय का पूण प्रकाश उत्पन्न किया, जब वह पूर्ण प्रकाश सायंकाल को छिप गया, तब मनुष्यों ने दीपक जलाये। इससे स्पष्ट है कि पूर्ण प्रकाश पहले उत्पन्न हुआ, अपूर्ण पश्चात्। अतः परमात्मा ने पूर्ण वेदों की शिक्षा प्रथम दी पश्चात् अन्य प्रकार की अपूर्ण शिक्षा आरंभ हुई।

मंत्र—शौनकोहि महाशालोअंगिरसं विधिवदुपसन्नः पप्रच्छ। कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति ॥ ३ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शब्दार्थ—शौनकः = शौनक ऋषि की संतान। हि = निश्चय करके। महाशालो = जिसके भवन बहुत बड़े थे। अङ्गिरसम् = सत्यवाह ऋषि के शिष्य अंगिरस ऋषि के। विधिवत् = शास्त्र-नियमानुकूल। उपसन्न = पास जाकर। पप्रच्छ = प्रश्न किया। कस्मिन्नु = किस हेतु। भगवो = हे ज्ञाता गुरु। विज्ञाते = जान लेने से। इदं सर्वम = यह सब। विज्ञात = ठीक प्रकार जाना हुआ। भवति = होता है। इति = यह बताओ।

अर्थ—शौनक ऋषि ने जो बहुत बड़े महल रखता था, अङ्गिरस के समीप शास्त्र-नियमानुकूल जाकर प्रश्न किया कि हे गुरु महाराज! किस एक के जानने से यह सब जाना जायगा। तात्पर्य यह है कि किसके जानने से मुझे किसी अन्य के जानने की आवश्यकता न रहेगी। अथवा कोई अन्तिम जानने योग्य वस्तु है, जिसके जानने के पश्चात सब जाना हुआ होगा, किसी के जानने की आवश्यकता न रहेगी। अर्थात् यह प्रश्न ब्रह्मविद्या के सम्बन्ध में है। क्योंकि और ऐसी कोई वस्तु नहीं, जो ब्रह्म की भांति सब से महान और सब से सूक्ष्म, सब से अधिक आवश्यकीय आनन्ददायक तथा ज्ञानदाता हो। इसके उत्तर में ऋषि कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मंत्र—तस्मै स होवाच द्वेविद्ये वेदितव्य इति ह स्मयद् ब्रह्मविदो वदन्ति पराचैवा परा च ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—तस्मै = इस शौनक को। स=वह अंगिरस। ह उवाच = यह कहने लगे। द्वेविद्ये = दो विद्या है। वेदिव्य = जानने योग्य हैं। हस्म = पुराने इतिहास का स्मरणार्थ कहते हैं। यत्=जो। ब्रह्मविद=वेद के ज्ञाता विद्वान् लोग। वदन्ति=कहते हैं। परा=जो परमात्मा के जानने का मुख्य साधन। अपराच=जिससे जगत् में धर्म, कर्म और सब पदार्थों का ठीक ज्ञान हो।

अर्थ—अङ्गि ऋषि ने शौनक को उपदेश किया कि इस जगत् में जानने योग्य दो प्रकार की विद्या हैं। जिस में से एक का नाम परा विद्या है, जिससे सब सूक्ष्म और व्यापक परमात्मा का ज्ञान होता है। दूसरी अपरा जिससे संसारिक धर्म कर्म और प्राकृतिक पदार्थों का ज्ञान होता है। आगे इसकी व्याख्या करते हैं।

मन्त्र—तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं। निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—तत्र=उन दोनों विद्याओं में। अपरा=अपरा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विद्या यह है। ऋग्वेदा=ऋग्वेद। यजुर्वेदः=युजुर्वेद। सामवेद=सामवेद। अथर्ववेदः=अथर्ववेद। शिक्षा = शिक्षा वेदांग। कल्प = कल्प वेद का दूसरा अंग। व्याकरणं = व्याकरण वेद का तृतीयांग। निरुक्त=निरुक्त वेद का चतुर्थांग। छन्द — छंद वेद का पंचमांग। ज्योतिष = ज्योतिष वेद का षष्ठमांग। इति = यह वेद और वेदांग अपरा विद्या है। अथ = इसके पश्चात। परा = पर वह विद्या। यया = जिससे। तदक्षरम् = वह ब्रह्म। अधिगम्यते = जाना जाता है।

अर्थ—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद के षष्ठाङ्ग अर्थात शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद, ज्योतिष यह सब अपरा विद्या में सम्मिलित हैं। और परा उस विद्या को कहते हैं जिससे केवल वह नाश रहित ब्रह्म जाना जाता है।

प्रश्न—क्या वेदों से ब्रह्म नहीं जाना जाता।

उत्तर—वेदों में ब्रह्म का ज्ञान है, परन्तु जब तक वेद को सुनकर उसका मनन युक्ति पूर्वक न किया जावे, और उसमें कहे हुए को मन में स्थित न किया जावे, तब तक ब्रह्म का साक्षात ज्ञान नहीं होता। इस कारण वेद के अर्थ सहित सुनने का नाम अपरा विद्या है। और जो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मनुष्य मनन करके निधिध्यासन के द्वारा साक्षात् करते हैं, उनको जो ज्ञान होता है वह परा विद्या है।

प्रश्न—बहुत से वेदों को अपरा विद्या और उपनिषदों को परा विद्या के नाम से पुकारते हैं।

उत्तर—उसमें कोई हानि की बात नहीं, क्योंकि उपनिषद् में भी वेद के साक्षात् करने वाले ऋषियों के उपदेश हैं, जो वेदों के व्याख्यान होने से वेद ही के ज्ञान से उत्पन्न हुए हैं।

मन्त्र—यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुः श्रोत्रं तदपाणिपादम्। नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः॥ ६॥

शब्दार्थ—यत् = जो। तत् = वह। अद्रेश्यम् = जो ज्ञानेन्द्रिय से अनुभव नहीं होता। अग्राह्यम् = जिसको कोई पकड़ नहीं सकता। अगोत्रम् = जिसका कोई गोत्र नहीं। अवर्णम् = जिसका ब्राह्मणादि वर्ण नहीं है। अचक्षुः = जिसके नेत्र नहीं। अश्रोत्रम् = जिसके कान नहीं। अपाणिपादम् = जिसके हाथ पांव नहीं। नित्यं = जो नित्य है। विभुं = व्यापक है। सर्वगतम् = सब के हाल को जानता। सुसूक्ष्म = जो अत्यंत सूक्ष्म। तद = वह। अव्ययं = नाश और त्रुटि रहित। या = जो। भूत

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

योनिम् = सम्पूर्ण जगत की जड़ चैतन्य सृष्टि का कारण है। परिपश्यन्ति = जो उस सर्व व्यापक को ध्यान से देखते हैं। धीराः = बुद्धिमान धैर्य्यव्रत मनुष्य।

अर्थ—अब उस परा विद्या से जानने योग्य ब्रह्म का लक्षण करते हैं, जो इन्द्रिय से अनुभव नहीं होता; क्योंकि इंद्रियां स्थूल पदार्थ को देखने वाली हैं। वह सूक्ष्म और सर्वव्यापक है, उसका कोई गोत्र और वर्ण नहीं, क्योंकि वह किसी वंश में उत्पन्न नहीं हुआ और न सतोगुण, रजोगुण इत्यादि उसमें आते हैं, जिससे कोई वर्ण कहा जावे। उसके नेत्र नहीं, क्योंकि नेत्र बाहर की वस्तु को देखने को होते हैं। उससे बाहर कोई वस्तु नहीं, जिसके लिये नेत्र की आवश्यकता हो। उसके कान नहीं, क्योंकि कान भी बाहर का शब्द सुनने के लिये होते हैं। और उसके हाथ पांव नहीं, क्योंकि यह जाने के लिये होते हैं। वह वहां जावे, जहां पहले से विद्यमान न हो। हाथ उस वस्तु को पकड़ते हैं जो बाहर हो। उससे बाहर कोई वस्तु नहीं है, वह नित्य है, जिसकी उत्पत्ति और नाश दोनों असम्भव हैं। और सर्वत्र विद्यमान हैं और सब के हृदय के जानने वाले हैं, उनको कोई साक्षी अथवा वकील आदि धोखे में नहीं डाल सकता। वह सब

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

से सूक्ष्म है, उसमें किसी दूसरी वस्तु के गुण नहीं आ सकते। वह निकृष्ट से निकृष्ट वस्तु के भीतर रहते हुए भी उस के प्रभाव से पृथक् हैं। वह नाश रहित है, जो उस सम्पूर्ण जगत् के कारण को ध्यान द्वारा साक्षात करते हैं। वह धैर्यव्रत् मनुष्य हैं, जो मनुष्य के उद्देश मार्ग को पूर्ण करते हैं। उसके जानने से सब जाने जाते हैं।

मन्त्र-यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामौषधयः सम्भवन्ति। यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि तथाऽक्षरात्सम्भवतीह विश्वम् ॥७॥

शब्दार्थ—यथा=जैसे। उर्णनाभिः=मकड़ी। सृजते=जाले को उत्पन्न करती। गृह्यते=जाले को अपने भीतर प्रवेश करती है। च=और। यथा=जैसे। पृथिव्याम्=पृथिवी के भीतर। औषधम्=औषधि अन्नादि। सम्भवन्ति=उत्पन्न हो जाते हैं। यथा=जैसे। सतः=विद्यमानता से। पुरुषात्=पुरुष से। केशलोमानि=शिर और शरीर के केश उत्पन्न होते हैं। यथा=जैसे। अक्षरात्=नाश रहित परमात्मा से। सम्भवति=उत्पन्न होता है। इह=जगत् में विश्वम्=सब जगत्।

अर्थ—तीन दृष्टान्त दिये हैं जिससे प्रकट होता है कि सृष्टि की उत्पत्ति निमित्त कारण से होती है। जो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मनुष्य उपादान कारण और निमित्त-कारण को एक मान कर सृष्टि की उत्पत्ति करना चाहते हैं, उन के समीप को दृष्टान्त नहीं। प्रथम दृष्टान्त यह है कि जिस प्रकार मकड़ी अपने भीतर से जाला निकालती है और फिर भीतर ही प्रवेश कर लेती है। इसी प्रकार परमात्मा अपनी माया में से जगत् को उत्पन्न करता है। माया अर्थात् प्रकृति जगत् का उपादान-कारण और परमात्मा निमित्त-कारण, क्योंकि मकड़ी में शरीर और आत्मा दो होते हैं। यदि एक ही होता, तो मृतक मकड़ी कहीं दृष्टि नहीं पड़ती। द्वितीय दृष्टान्त दिया कि जैसे भूमि से अन्न उत्पन्न होता है। यहां भी बीज और भूमि या पानी और भूमि दो होते हैं। बिना पानी के भूमि से कोई वस्तु उत्पन्न नहीं होती। तृतीय, जीव की विद्यमानता से शरीर में केश और लोम उत्पन्न होते हैं, यदि अकेले उत्पन्न होते तो मृतक शरीर से उत्पन्न हो जाते, अथवा बिना शरीर के आत्मा में उत्पन्न हो जाते। यही दृष्टान्त है जिनको अद्वैतवादी मनुष्य अभिन्न, निमित्त, उपादान-कारण की व्याख्या करते हुए पेश करते हैं। यह उनके मत को सिद्ध नहीं करते, किन्तु खण्डन करते हैं। इसी लिये उन्होंने और भी बहुत से वाद एक ही ब्रह्म से सृष्टि उत्पन्न करने के लिये कल्पना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करते हैं, परन्तु प्रत्येक निर्बल ही प्रतीत होता है। क्योंकि परमात्मा जो नित्य स्वामी और नित्य ही राजा है, उन की प्रजा का सत्य होना आवश्यकीय है। यदि प्रकृति न हो, तो उनका नाम परमात्मा किस प्रकार हो सकता है। क्योंकि बिना किसी व्याप्य के जिसमें व्यापक हो सके, व्याप्य कसे कहला सकते हैं।

मंत्र—तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते। अन्नात्प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—तपसः = परमात्मा के ज्ञान से। चीयते = महानता है, परमात्मा को जीवात्मा और प्रकृति पर इस महानता के कारण वह। ब्रह्म = सब से बड़ा कहलाता है। ततः = उस परमात्मा के ज्ञानानुकूल प्रकृति को क्रिया करने से। अन्नम् = जो सब को बिना किसी विशेषतः के पचाता है अर्थात् प्रकाश रूप अग्नि। अन्नात् = उस अन्न से। प्राण = प्राण बनते हैं। मनः = मन उत्पन्न हुआ। सत्यं = और उससे सत्य अर्थात् कारण रूप सूक्ष्म भूत उत्पन्न हुए और। लोक = उससे यह स्थूल शरीर उत्पन्न हुआ। कर्मसु = उन से कर्म और कर्म से। च = और। अमृतम् = मुक्ति का साधन अन्तः करण की शुद्धि होती है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अर्थ—परमात्मा जब अपने अनन्त ज्ञान से जगत् को उत्पन्न करते हैं, तो कतिपय मनुष्य यह संदेह करते हैं, कि जिस प्रकृति से जगत् को उत्पन्न किया जाता है और जो जीव उसमें प्रविष्ट होता हैं, परमात्मा को उन पर महानता क्यों है ? यदपि यह प्रश्न मूर्खता को प्रकाशित करता है, क्योंकि शब्द 'क्यों' का प्रयोग उत्पन्न हुई वस्तु पर किसी नित्य वस्तु पर इस शब्द का प्रयोग किसी प्रकार सम्भव नहीं। यथा कोई कहे अग्नि क्यों गरम (उष्ण) है, प्रकृति क्यों जड़ है, जीव क्यों चेतन्य है, ईश्वर क्यों नित्य है। परन्तु इस महत्व का कारण भी ऋषियों ने बता दिया है। वह कहते हैं कि ब्रह्म को दोनों पर महत्व इस कारण है कि वह ज्ञानानुकूल क्रिया देकर जगत् को बनाता है। जड़ प्रकृति से हरकत देने के कारण और अल्पज्ञ जीवात्मा को ज्ञान देने के कारण वह उन पर महत्व रखता है,। और इसी ज्ञान के महत्व के कारण उसका नाम ब्रह्म है। और इस ज्ञान के अनुकूल प्रकृति को हरकत देने से आकाश उत्पन्न हुआ और आकाश से प्राण अर्थात् वायु और अग्नि उत्पन्न हुई और उससे जल, पृथिवी व मन उत्पन्न हुए, उस से सूक्ष्मभूत और उससे पंच तन्मात्रा अर्थात् गंध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द उत्पन्न

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हुए, इस से स्थूल शरीर उत्पन्न हुए और उनसे जीव कर्म करने लगे और कर्म से ही अमृत अर्थात् मुक्ति के साधन हो सकते हैं।

प्रश्न—इस श्रुति में तो अन्न शब्द है, उसका अर्थ आकाश किस प्रकार कर लिया ?

उत्तर—जो सम्पूर्ण पदार्थों को खा जावे, अथवा जिस को भूत खावें, उसको अन्न कहते हैं। अतः आकाश के बिना कोई भी नहीं रह सकता और आकाश ही सब का नाश करने वाला है। जिस वस्तु में आकाश नहीं, वह ही वस्तु अविनाशी है। इस लिये आकाश अर्थ हो सकता है।

प्रश्न—श्रुति में तप शब्द का अर्थ ज्ञान तथा चेतन्य कैसे हो सकता है।

उत्तर—श्रुति ने बताया है कि ब्रह्म का तप ज्ञान ही है। वह प्रत्येक वस्तु को ज्ञान से हरकत देता है। वह सर्वव्यापक स्वयम् हरकत कर के दूसरों को हरकत नहीं देता, किंतु ज्ञान-रूपी तप से ही हरकत देता है।

मन्त्र—यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः।
तस्मादेतद् ब्रह्म नाम रूपमन्नं च जायते॥ ९॥

शब्दार्थ यः=जो परमात्मा परा विद्या से जाना जाता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है। सर्वज्ञः=जो सर्वज्ञ है। सर्ववित=जो एक ही समय में सब को जान रहा है। यस्य=जिस का। ज्ञानमयं तपः= जिस का ज्ञान स्वरूप ही तप है। तस्मात्=इस कारण से परमात्मा से। एतत्=यह। ब्रह्म=सब से महान। नाम= बड़े का नाम। रूपम्=रूप। अनाम्=औषधि आदि। जायते=उत्पन्न होते हैं।

अर्थ—जो परमात्मा सम्पूर्ण जगत् के पदार्थों को जानता है, जिसका ज्ञान स्वाभाविक है, जिसको नैमित्तिक ज्ञान कहीं होता ही नहीं। क्योंकि जिसका ज्ञान प्रथम न हो, उस का ज्ञान न होने से वह सर्वज्ञ न हो, पहले जिस को न जानता हो उसी को जाने, वह सर्वज्ञ होने से पहले ही से सबको जानता है। और यह नहीं कि किसी को अब जाना और किसी को कल। किंतु कुलको प्रत्येक स्थान पर होने से प्रत्येक समय एक साथ जानता है और इस ज्ञान के महत्व से, उस का नाम ब्रह्म है। और उस से जगत् में नाम, रूप और भोग्य वस्तु उत्पन्न हुई हैं। यदि परमात्मा अपने ज्ञान में से नाम रूप की विद्या न देता, तो जीव उस को किसी प्रकार नहीं जान सकते।

प्रश्न—क्या हम जो कुछ संसार में परिवर्तन देखते हैं कि परमात्मा इनको नहीं जानता ?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उत्तर—जगत् में जो कुछ है, वह सब तीन भागों में है। एक जाति, दूसरे आकृति, तीसरे व्यक्ति यह तीनों पृथक्-पृथक् विद्यमान होती हैं उत्पन्न नहीं होती हैं। इस लिये परमात्मा इस को पहले से जानते हैं। क्योंकि जाति उस वस्तु का नाम है, जो एक से गुणवाली बहुत सी वस्तु पर ठीक ठीक प्रयोग हो और वह जाति परमात्मा के ज्ञान में सदा रहती है। क्योंकि उसका चिन्ह आकृति है और आकृति प्रत्येक वस्तु में कर्त्ता के ज्ञान से आया करती है। जैसे मकान के बनने से पहले इंजीनियर उसका चित्र तय्यार करता है। मकान में जो आकृति आती है, उस चित्र से आती है, जो मकान के बनने से पहले इंजीनियर के ज्ञान में विद्यमान थी। और शरीर बनने के सामान प्रकृति में विद्यमान थे; अतः तीनों वस्तु परमात्मा के ज्ञान में पहले से विद्यमान होती हैं। फिर नवीन कौन सी वस्तु है, जिस का उसे ज्ञान हो।

प्रथम मुण्डक का प्रथम खण्ड समाप्त हुआ।

———

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अथ प्रथम मुण्डक-द्वितीय खण्ड ।

मन्त्र—तदेतत्सत्यं मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यान्यपश्यंस्तानि त्रेतायां बहुधा सन्ततानि । तान्याचरथ नियतं सत्यकामा एष वा पन्थाः सुवकृतस्य लोके ॥ १ । १० ॥

अब द्वितीय खण्ड में परमात्मा के जानने में जो रुकावट अंतःकरण का मलीन होना है, जिसके कारणसे मनुष्य परमात्मा के पुरुषार्थ करते हुए सफल नहीं होते । यथा दर्पण के बिना नेत्र और उस में रहनेवाला अंजन दृष्टि नहीं आता । परमात्मा ने जीव को अपने स्वरूप और परमात्मा को जानने के लिये मन का दर्पण दिया है, जिस को अविद्या से यह जीवात्मा मलीन कर लेता है । और उस मन के मलीन हो जाने से, जीव को न तो अपना ही ज्ञान रहता है, न परमात्मा का । अब उस मन को शुद्ध करने का विधान बताते हैं ।

शब्दार्थ—तदतत्सत्यं=यह बात सत्य है कि प्रत्येक प्रयत्न धर्म वाले जीव को कर्म करना चाहिये, क्योंकि वेद में ईश्वर ने जीव को जिन कर्मों को करने की आज्ञा दी है वह हानि नहीं कर सकते । मंत्रेषु=वेद मन्त्रों में ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कर्माणि=जितने कर्म। कवयः=ज्ञानी ऋषियों। यानि=जो जो। अपश्यन्=देखने अर्थात् योग से मालूम किये। तानि=उनको। त्रेतायाम्=त्रेतायुग में अथवा तीन गुण वाले जगत् में। बहुधा=बहु प्रकार की व्याख्या के साथ। सन्ततानि=शास्त्रों के द्वारा बता कर। तानि=उन को। आचरथ=कर्म में लाओ। नियतं=नियमानुकूल। सत्य-कामा=सत्य की कामना रखने वाले मनुष्यों। एष=यही। वः=तुम्हारा। पन्थाः=मार्ग मत है। सुकृतस्यः=अपने कर्तव्य के पालन का। लोके=संसार में।

अर्थ—जो मनुष्य सत्य अर्थात् तीन काल में रहने वाले परमात्मा के जानने की इच्छा रखते हों, उनके लिये सन्मार्ग यह हैं कि अन्तःकरण की शुद्धि के अर्थ सब से प्रथम ज्ञान के अनुकूल निष्काम कर्म करें। क्योंकि जब तक मन का दर्पण शुद्ध न हो, तब तक जीव को परमात्मा का और अपना ज्ञान हो ही नहीं सकता। और वेद के मन्त्रों में ज्ञानी ऋषियों ने जिन जिन कर्मों को देखा कि यह जीव के अन्तःकरण की शुद्धि के कारण हैं। उन कर्मों को त्रेतायुग में या तीन प्रकारके सत, रज, तम, गुण वाले संसार में प्रत्येक अधिकारी की अवस्था के अनुकूल पृथक् पृथक् करके दिखाया। तुम उस वेदोक्त कर्म को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करो। क्योंकि बिना उस के तुम्हारी परमात्मा की प्राप्ति की इच्छा का पूर्ण होना कठिन है। यदि कोई मनुष्य दर्पण को शुद्ध करने का कर्म न करके, दर्पण में से नेत्र और नेत्र के अंजन को देखने का यत्न करे, परन्तु वह देख नहीं सकता। इसी प्रकार जो मनुष्य बिना निष्काम कर्म के द्वारा अन्तःकरण को शुद्ध करके परमात्मा को देखना चाहे वह अज्ञानी है।

प्रश्न—कब तक कर्म करना चाहिये?

उत्तर—जब तक अन्तःकरण प्रत्येक प्रकार के दोषों से शुद्ध न हो जावे।

प्रश्न—इसका क्या प्रमाण है कि अब अन्तःकरण शुद्ध हो गया है, अथवा नहीं शुद्ध हुआ?

उत्तर—जब तक तीन प्रकार की कामना शेष रहती हैं, तब तक मन अशुद्ध होता है। और जब शुद्ध हो जाता है, तब यह तीन प्रकार की इच्छाएं निवृत्त हो जाती हैं।

प्रश्न—वह तीन प्रकारकी कामना कौन सी हैं, जिन के दूर होने से मन निर्मल हो जाता है?

उत्तर—वित्तेषणा अर्थात् धन की इच्छा, जिस को धन की इच्छा है, उसका मन मलीन है। द्वितीय, पुत्रेषणा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अर्थात् संतान की इच्छा। तृतीय, लोकेषणा अर्थात् यश, प्रतिष्ठा और शासन की इच्छा।

प्रश्न—धन की इच्छा क्यों मन के मलीन होने का प्रमाण है ?

उत्तर—धन दूसरे को हानि पहुंचा कर ही तो प्राप्त होता है। दूसरे उस से प्रत्येक समय हानि ही होती है। जैसाकि भर्तृहरि जी ने कहा कि प्रथम तो धन के एकत्र करने में ही कष्ट होता है। दूसरे उस के रक्षा करने में ही रात्रि दिवस जागना पड़ता है। तीसरे, व्यय करने में भी विचार होता है कि अधिक व्यय हो गया। चौथे, नाश होने पर तो बहुत ही हानि होती है, सैकड़ों को पागल बना देता है।

प्रश्न—लोकेषणा क्यों बुरी है ?

उत्तर—उस में भी दूसरे मनुष्यों की स्वतन्त्रता पर ही आघात करना पड़ता है ?

मन्त्र—यदा लेलायते ह्यर्चिः समिद्धे हव्यवाहने। तदाज्यभागावन्तरणाऽऽहुतीः प्रतिपादयेच्छ्रद्धया हुतम् ॥ २। ११ ॥

शब्दार्थ—यदा=जिस समय। लेलायते=ठीक प्रकार जल उठे। हि=निश्चय। अर्चि=अग्नि की लाट। समिद्धे=समिधा में प्रवेश कर जावे। हव्यवाहने=हवन की सामिग्री

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

को सूक्ष्म करके उड़ाने वाली अग्नि। तदा=उस समय। आज्यभागौ=घी के देने योग्य दो आहुतियों को। अन्तरेषा=अन्तर है। आहुति=आहुति। प्रतिपादयेत्=डालता जावे। श्रद्धया=श्रद्धा से। हुतम्=जिस से हवन ठीक हो सके।

अर्थ—अब यज्ञ के लिये जो निष्काम कर्म है, उस का विधान बताते हैं कि जब समिधा में लगी हुई अग्नि भले प्रकार से अग्नि में प्रवेश कर जावे और देवतों को हवन का भाग पहुंचाने वाली अग्नि भले प्रकार प्रचंड हो जावे, घृत की दो आहुतियों के अन्तर से हवन कुण्ड में श्रद्धा से आहुतियां डालना चाहिये।

प्रश्न—यज्ञ को निष्काम कर्म क्यों कहते हैं? क्योंकि वह वायु की शुद्धि के अर्थ किया जाता है?

उत्तर—यज्ञ केवल वायु की शुद्धि के लिये तो विद्वान मनुष्य स्वीकार नहीं करते, किन्तु उस से और भी बहुत लाभ हैं। यथा हम यदि भोजन बांटें, तो सम्भव है अपने मित्रों को दें और शत्रुओं को उस से वंचित रक्खें। परन्तु हवन में जो सामिग्री डाली जाती है, उसका प्रभाव प्रत्येक मित्र शत्रु पर बिना किसी विचार के एक-सा होता है। इस कारण यज्ञ का नाम निष्काम कर्म भी है, जब कि किसी संसारिक स्वार्थ से न किया जावे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मंत्र—यस्याग्निहोत्रमदर्शमपौर्णमासम् चातुर्मास्यम-नाग्रयणमतिथिवर्जितञ्च । अहुतमवैश्वदेवमविधि-नाहुतमासप्तमास्तस्य लोकान् हिनस्ति ॥ ३ । १२ ॥

शब्दार्थ—यस्या = जिस गृहस्थी के घर का । अग्नि-होत्रम् = अग्निहोत्र । अदर्शम् = वह यज्ञ जो अमावस्या और एकम् के मिलाप के समय होता है । अपौर्णमासम = जो पूर्णमासी में करने वाला यज्ञ नहीं करता । चातुर्मास्य = वह यज्ञ जो चतुर्मास में किया जाता है, वह नहीं होता । अनीग्रयणम् = जो शरद ऋतु अर्थात् कार्तिक के मास में करने वाला यज्ञ नहीं करता । अतिथि वर्जितम् = जिस घर में अतिथि की प्रतिष्ठा नहीं होती । अहुतम् = जो समय पर अग्निहोत्र नहीं करता है । अवैश्वदेवम् = जिसके घर में छोटे जीवों के निश्चित का वलिवैश्व देव यज्ञ भी नहीं होता अविधिनाहुतम् = जो नियम-विरुद्ध हवन करता है । आसप्त-मान् = सात वर्षों तक । तस्य = उसके । लोकान् = लोकों को । हिनस्ति = नाश करता ह ।

अर्थ—जिस घर में अग्निहोत्र वर्ष यज्ञ अर्थात् जो यज्ञ अमावस और एकम् के योग पर होता है, पूर्णमासी का यज्ञ और चतुर्मास में करने योग्य शरद ऋतु में करने योग्य यज्ञ नहीं किये जाते । और जिस घर में आए हुए अतिथि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

का सत्कार नहीं होता। और जिस घर में अग्निहोत्र काल पर नहीं होता और नियमपूर्वक नहीं करता। और जिस घर में अनियम अग्निहोत्र किया जाता, उसके सप्तलोक नाश होजाते हैं। इस अवसर पर किसी का विचार तो यह है कि उसकी अगली सात पीढ़ी तक नष्ट हो जाती है परन्तु यह उचित नहीं मालूम होता। क्योंकि जब दूसरे तीसरे कुल के मनुष्य नष्ट होगये, तो और अगले उत्पन्न ही नहीं होंगे। इस लिये सप्त शब्द ठीक प्रयोग नहीं होता बहुतेरे कहते हैं कि पहिली सप्त पीढ़ी नष्ट होगई। यह भी ठीक नहीं। क्योंकि पिछली दो तीन से अधिक जीवित नहीं होतीं। कुछ मनुष्य कहते हैं कि सात पीढ़ी का धर्म नाश होता है। परन्तु यह भी ठीक नहीं। क्योंकि एक के धर्म न करने से दूसरे का धर्म नष्ट नहीं हो सकता। अतः इसका मूल तात्पर्य यह है कि जो नियमों को तोड़ता है, उसके अन्तःकरण की शुद्धि नहीं होती। और अन्तःकरण की शुद्धि न होने से वैराग्य नहीं होता। और वैराग्य न होने से अन्तःकरण की स्थिति नहीं होती। और अन्तःकरण के स्थिर न होने से ईश्वर की उपासना नहीं होती। और ईश्वर की उपासना न होने से दुःख की निवृति नहीं होती और दुःख की निवृति न होने से आनन्द नहीं मिलता।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दुःख की निवृत्ति तथा आनन्द की प्राप्ति न होने से मुक्ति नहीं होती। क्योंकि निष्काम यज्ञ अन्तःकरण की शुद्धि का कारण है और अन्तःकरण की शुद्धि से ही वैराग्य होता है। जिसका मन मलिन है, उसको वैराग्य नहीं हो सकता। और जिस को वैराग्य नहीं, उसका मन स्थिर नहीं हो सकता। जिसका मन स्थिर नहीं, उसको ईश्वर की उपासना नहीं, उसको दुःख से निवृति किस प्रकार हो सकती है। और जब बुद्धि दुःख के साथ सम्बन्ध रखती है, तो आनन्द किस प्रकार मिल सकता है। जहां दुःख की निवृत्ति और आनन्द की प्राप्ति नहीं, वहां मुक्ति कैसी अतः निष्काम कर्म न करने वाले के यह सात अन्तःकरण की शुद्धि, विराग, अन्तःकरण की स्थिति, ईश्वर की उपासना, दुःख से दूरी, आनन्द की प्राप्ति और मुक्ति नाश होजाती है। अर्थात यह सप्त लोक नहीं मिल सकते, इनके दर्शन से वञ्चित रहता है।

मन्त्र—काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा। स्फुलिङ्गिनी विश्व रूपी च देवी लेलायमाना इति सप्तजिह्वाः ४।१३

शब्दार्थ—काली=जिसका रंग काला है। कराली=भयङ्कर। मनोजवा=मनकी भांति बहुत ही चंचल। सुलो-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हिता या च=ठीक प्रकार लाल रंग वाली। सुधूम्रवर्णा=शुद्ध धूम्र की भांति जिसका रंग है। स्फुलिङ्गिनी=जिस में चिनगारियां निकल रही हैं। विश्वरूपी=जिसके भीतर सब प्रकार के अङ्ग विद्यमान हैं। च=और। देवी=प्रकाश करने वाली। लेलायमाना=दहकते हुए प्रकाश से युक्त। इति=यह। सप्त=सात। जिह्वा=जिस में होम करना है, उसकी यह जिह्वा अर्थात् अवस्था है।

अर्थ—जिस समय अग्नि इन सात दशाओं में अर्थात् वेग से जल रही हो। उस समय होम करना चाहिये। एक ओर काला धूम्र निकल रहा हो। दूसरे देखने से भयङ्कर मालूम हो। रक्त वर्ण लाटें निकल रही हों। चारों ओर धूम्र फैलने से आकाश धूम्र वर्ण बना रहे और चिनगारियां छोटी छोटी उठ रही हों। और प्रत्येक वर्ण की प्रकाशकर्त्री अग्नि देवी प्रकाश कर रही हो। और जिस समय अग्नि प्रकाश हो कर इधर उधर लहर मार रही हो, यह सात दशा हैं, जिस समय अग्निमें होम करना चाहिये। आशय यह है कि बुझी हुई अग्नि में अग्निहोत्र करना ठीक नहीं, किंतु खूब जलती हुई अग्नि में होम करना चाहिये।

मन्त्र—एतेषु यश्चरते भ्राजमानेषु यथाकाल चाहुतयोह्याददायन्। तन्नयन्त्येताः सूर्य्यस्य

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रश्मयो यत्र देवानां पतिरेकोऽधिवासः ॥६।१४॥

शब्दार्थ—एतेषु=उपरोक्त दशाओं में । यः=जो अग्निहोत्र आदि वेद के अनुकूल करता है । चरते=अग्निहोत्र करता है । भ्राजमानेषु=प्रकाश करते हुए हैं । यथा कालम=ठीक काल के अनुकूल आहुति देना । च=और । आहुतयः=आहुति जो अग्निहोत्रमें एक बार सामिग्री डालते हैं । हि=निश्चय कर के । आददायन्=ठीक प्रकार देने वाले । तन्न=उसको जिसने निष्काम कर्म किया है अर्थात् भूख की इच्छा त्याग कर दूसरों के उपकारार्थ यज्ञ किया है । नयन्ति=प्राप्त होती या कराती हैं । एता=यह आहुतियां । सूर्यस्य=सूर्य की । रश्मयः=किरणों के द्वारा या प्राणवायु के साथ । यत्र=जहां । देवानां=देवतों का पति । एकः=एक । अधिवासः=जो सम्पूर्ण जगत् के निवास का स्थान ।

अर्थ—जो मनुष्य इस प्रकार ठीक-ठीक जलती हुई अग्नि में वेद के अनुकूल निष्काम भाव से आहुतियां देता ठीक-ठीक कर्म करता है । अर्थात् जिस समय और जिस प्रकार से जो आहुति देनी चाहिये, उसी प्रकार देता है । उस निष्काम करने वाले को सूर्य की किरणों के साथ मिलकर यह आहुतियां देवतोंके पति सूर्य या परमात्मा के,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जो एक होकर सम्पूर्ण जगत् की रक्षा और प्रकाश कर रहा है, पहुंचा देती हैं। तात्पर्य्य यह है कि जब मनुष्य निष्काम यज्ञ करता है, तो उसकी सामिग्री की आहुतियां सूर्य की किरणों या मेघ आदि में होती हुई संसार को लाभ पहुंचाती हैं। और करने वाले का अन्तःकरण परोपकार के कारण शुद्ध हो कर ईश्वर के नियमों के अनुकूल उन्नति करता हुआ एक समय में उस जीव को सम्पूर्ण देवों के देव परमात्मा के दर्शन तक पहुंचा देता है। जिस के भीतर सब जगत् पालन कर रहा, जो सब से बड़ा होने से सब के समीप विद्यमान होने पर भी दूर रहता है।

मंत्र—एह्येहीति तमाहुतयः सुवर्चसः सूर्यस्य रश्मिभिर्यजमानं वहन्ति। प्रियां वाचमभिवदन्त्योऽर्चयन्त्य एष वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः॥ ६। १५॥

शब्दार्थ—एहि एहि=आए हुए इस प्रकार। इति=यह। तम्=उस यज्ञ करने वाले। आहुतयः=वह आहुतियां। सुवर्चसः=उत्तम धर्म से जगत प्रकाश करने वाली। सूर्यस्य=सूर्य की। रश्मभि=किरणों के द्वारा मृत्यु के पश्चात्। यजमान=यज्ञ करने वाले पुरुष को। वहन्ति=मुक्ति दशा को प्राप्त कराती हैं। प्रियाम् वाचम्=मीठी वाणी को। अभिवदन्त्य=कहती हुई। अर्चयन्त्यः=पूजा करती हुई या सुख

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पहुंचाती हुई। एष=यह। वः=तुम्हारा। पुण्य=नेक कर्म। सुकृतः=भले प्रकार कहा हुआ। ब्रह्मलोकः=परमेश्वर के दर्शन या ज्ञान का कारण है, जिसके फल में दुख लेशमात्र भी नहीं; सदा सुख ही होता है।

अर्थ—जो कुछ मनुष्य शुभ कर्म करता है, उसकी दो अवस्था होती हैं। एक अवरिष्ट, द्वितिय संस्कार; अवरिष्ट का संस्कार मन में स्थित हो जाता है। और जब उस कर्म के अवरिष्ट फल के भोग का समय आता है, तब वह संस्कार अपने साथी अवरिष्ट को सूर्य की किरणों में जो फैली हुई विद्युत है, उसके द्वारा अपने समीप बुला लेता है। जिस प्रकार संसार में देखा जाता है कि जिस प्रकार का बीज बोया जाता है वह अपने जाति के परमाणुओं को बुला लेता है। जिस प्रकार मिरच का बीज उसी भूमि से कडुवे परमाणु खींच लेता है। उसी प्रकार जिस प्रकार के संस्कार के साथ अवरिष्ट का उदय होता है, वैसा ही संस्कार पहले उदय होता है। जिस भांति समझदार धर्मात्मा के भीतर से एक प्रकार की आवाज आती है, जो प्रकट करती है कि अब सुख देनेवाले कर्मों का उदय होगा और पापी को पाप का फल उदासी और चिन्ता की अवस्था में आता हुआ देख पड़ता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रश्न—क्या आहुतियां चेतन्य हैं ? जो प्रसन्नता से पुकारती हैं ।

उत्तर—पुकारना दो प्रकार से होता है; एक वाणी से, द्वितीय इशारे से । ऋषि का तात्पर्य वाणी से है, जिस के लिये जड़ चैतन्य की कोई विशेषता नहीं ।

मंत्र—प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म । एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा जरामृत्युं ते पुनरेवापि यन्ति ॥ ७ । १६ ॥

शब्दार्थ—प्लवा = दुख से युक्त । हि = निश्चय करके । एते = यह । यदृढा = जो आरूढ़ नहीं है । यज्ञरूपा = कामना से किये हुए यज्ञादि कर्म । अष्ट दशोक्तं = जिस में अष्टादश यजमान ब्रह्मा और १६ ऋतिजों का विधान है, या १७ अङ्ग शरीर के और एक आत्मा १८ की दुरुस्ती के वास्ते जो बताये गये । अवरः = जो इस ओर का है । येषुकर्म = जिस कर्म से प्रधान है । एतत् = यह है । श्रेय = मुक्ति का मार्ग है । ये = जो । अभिनन्दन्ति = सब से अन्तिम मार्ग मान कर जो इस पर अभिमान करते हैं । मूढा = मूर्ख लोग । जरा = बुढ़ापे । मृत्यु = मृत्यु को । ते = वह कर्मकाण्डी मनुष्य । पुनर = फिर । एव = ही । अभि = भी । यान्ति = प्राप्त होते हैं ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अर्थ—जो मनुष्य इस निष्काम कर्मकाण्ड को जिस का फल दृढ़ और अति सुख का देनेवाला नहीं, किंतु उस का फल सुख दुख युक्त है। जिस यज्ञ में कर्म १८ कराने वाले बताए हैं जो १८ अर्थात दश इंद्रियां, पांच प्राण, मन, अहंकार और जीव की शुद्धि के लिये किया जाता है। यद्यपि यह कर्म पापों की अपेक्षा तथा न करने की अपेक्षा उत्तम है, परन्तु जो मनुष्य इसी को सब से श्रेष्ठ कर्म मान कर और यह विचार करके कि केवल कर्म से ही मुक्ति हो जावेगी, आगे यत्न नहीं करते, किंतु इस पर प्रसन्न हैं; वह मूर्ख मनुष्य बार-बार जन्म मृत्यु प्राप्त करते हैं। आशय यह है कि निष्काम कर्म का फल पापों से तो उत्तम है, परन्तु मुक्ति नहीं है और निष्काम कर्म का फल निष्काम से उत्तम है, परन्तु साक्षात् मुक्ति का साधन नहीं है।

प्रश्न—क्या कर्म से मुक्ति नहीं होती ?

उत्तर—अकेला कर्म मुक्ति का साधन नहीं, किन्तु ज्ञान कर्म उपासना से जो विज्ञान प्राप्त होता है वह मुक्ति का साधन है।

प्रश्न—वेद ने आज्ञा दी है कि जब तक जीता रहे, कर्म करता रहे। और कर्म बन्धन का हेतु नहीं।

उत्तर—निःसंदेह शत वर्ष तक कर्म करता हुआ जीवे,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

परन्तु वह कर्म चार प्रकार का है। ब्रह्मचारी का कर्म पढ़ना है, जैसाकि सम्पूर्ण शास्त्रकार स्वीकार करते हैं। गृहस्थ का कर्म यज्ञादि करना है। और वानप्रस्थ का कर्म उपासना करना है। और संन्यास आश्रम में विज्ञान प्राप्त करना है।

प्रश्न—बहुत से मनुष्य तो इतना ही कहते हैं कि कर्म करने से ही मुक्ति होती है। और कोई कहते हैं, उपासना अर्थात् भक्ति से भी मुक्ति होती है। और कुछ कहते हैं विज्ञान से मुक्ति होती है। इस में सत्य क्या है?

उत्तर—न तो ज्ञान के बिना कर्म से मुक्ति हो सकती है, क्योंकि पाप भी एक प्रकार का कर्म है, वह क्यों पाप है। इसलिये कि ज्ञान उसके विरुद्ध है और न अकेले ज्ञान से मुक्ति हो सकती है। यह सब ही सच्चे हैं, क्योंकि एक मकान में बहुत श्रेणी हैं, प्रत्येक श्रेणी वाला सत्य कहता है कि इस सीढ़ी से चढ़ने के बिना मकान पर नहीं चढ़ सकता। परन्तु अन्तिम श्रेणी विज्ञान की है, उसकी अपेक्षा सब श्रेणियां मार्ग से दूर की हैं और वह मार्ग के समीप की है।

मन्त्र—अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयंधीराः पण्डितम्मन्यमानाः। जङ्घन्यमानाः परियन्ति मूढ़ा अन्धेनैव नीयमाना यथाऽन्धाः॥ ८। १७॥

शब्दार्थ—अविद्यायाम्—अविद्या अर्थात् मिथ्या कर्म से

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मुक्ति होती है, इस विचार के। अन्तरे=भीतर। वर्तमानाः=रात दिवस फँसे हुए। स्वयं = अपने को। धीरा = ज्ञानी। पण्डित = सत असत का विचार करने वाले। मन्यमाना = मानते हुए। परियन्ति = इधर उधर भागते हैं। मूढ़ा = मूर्ख मनुष्य। जङ्घन्यमाना = नीची अवस्था में गिरते हुए। अन्धेन = अन्धे के पीछे लगकर। एव = है। नीयमाना = अन्धे हैं। यथा = जैसे। अन्धः = दूसरा अन्धा।

अर्थ—मूर्ख मनुष्य कर्म में फँसे हुए; और कर्म से मुक्ति होती है, इस विचार में मतवाले होकर अपने को बुद्धिमान् और पण्डित समझते हुए नीच योनियों में जा गिरते हैं। जैसे अंधे के पीछे लगकर दूसरा अंधा भी कूप में जा गिरता है। इसी प्रकार यह मनुष्य भी अविद्या में ग्रसित स्वयं तो गिरते हैं परन्तु दूसरों को अपने साथ कूप में गिराते हैं। तात्पर्य यह है कि कर्मकाण्ड की श्रेणी तो हैं, जिस को ग्रहण करना और त्यागना अवश्य है। और जो मनुष्य इस सीढ़ी का आश्रय लेकर आगे चलने से रुक जाते हैं और दूसरों को भी रोकते हैं वह स्वयम् भी गिरते हैं और अपने सहायकों को भी गिराते हैं। जैसे अन्धे के पीछे अन्धा लगकर गिरता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मंत्र—अविद्यायां बहुधा वर्त्तमाना वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः । यत्कर्मणि न प्रवेदयन्ति रागात्तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते ॥ ९ । १८ ॥

शब्दार्थ—अविद्यायां=उपरोक्त ज्ञान में। बहुधा=बहुत तरह पर । वर्त्तमाना=रहते हुए ना काम करते हुए । वयं=हम लोग। कृतार्था=मार्ग पर पहुंच गये । इति=यह । अभिमन्यन्ति=अभिमान करते हैं । बाला=अज्ञानी लोग । यत्कर्मणि=जिस कर्म में फँसे हुए । न=नहीं । प्रवेदयन्ते=परमात्मा को नहीं जानते । रागात्=राग से। तेन=उससे। अतुरा=दुखी होकर । क्षीण लोका=नीच योनियों में । च्यवन्ते=गिर जाते हैं अर्थात् मनुष्य योनि से गिर कर पशु योनि में प्रवेश करते हैं ।

अर्थ—कर्मकाण्ड में फँसे हुए अर्थात् कर्म को ही मुक्ति का साधन मानते हुए हम सफल होगये हैं; ऐसा अभिमान करते हैं, वह अज्ञानी हैं । क्योंकि प्रथम बता चुके हैं कि अकेले कर्म से मुक्ति नहीं हो सकती । जो कर्म करने वाले निष्काम करके अन्तःकरण की शुद्धि के द्वारा परमात्मा के ज्ञान तक पहुँच जाते हैं, उनको तो कर्म में अभिमान नहीं होता । जो कर्म के अभिमान से परमात्मा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के जानने का प्रयत्न नहीं करते, जिससे उनको आत्मज्ञान नहीं होता। और वह कर्म के रोग से दुखी होकर ज्ञान से नीचे की अवस्था अर्थात् जन्म मरण के चक्र में जा गिरते हैं।

प्रश्न—शुभ कर्म करने वालों को भी जन्म लेना पड़ेगा, क्या उनकी मुक्ति नहीं होगी ?

उत्तर—जन्म मरण का कारण पाप पुण्य के फल हैं। और पाप पुण्य का कारण प्रवृत्ति है, अर्थात् शुभाशुभ कर्म में लगना अशुभ काम से पाप और शुभ से पुण्य होता है। और प्रवृत्ति का कारण राग और द्वेष है। जिस में द्वेष होता है, उसके नाश का यत्न किया जाता है। और जिसमें राग होता है, उसके प्राप्त करने का यत्न किया जाता है। और जिसमें राग द्वेष विद्यमान हैं, उस का जन्म होना अवश्य है। जिसका राग नाश हो जावे, उसका जन्म मरण नाश हो सकता है।

मंत्र—इष्टापूर्त्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढा। नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीनतरं च विशन्ति ॥ १० । १९ ॥

शब्दार्थ—इष्टापूर्त्त = संसारिक इच्छा से जो काम बावली कूप, सर, यज्ञ इत्यादि किये जाते हैं। मन्यमानाः=इनमें सब से बड़े होने का विचार रखने वाला। वरिष्ठ=इस से अधिक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कोई मार्ग ही। न=नहीं। अन्यत=दूसरे कोई मुक्ति। वेद-यन्ते=जानते हैं। प्रमूढा=अत्यन्त मूढ़। नाकस्य=जिस देश अथवा अवस्था में दुख नहीं है उस देश या अवस्था के। पृष्ठे = उस पर पहुंच कर। ते = वह। सुकृते = शुभ कर्मों का फल। अनुभूत्वा=अनुभव करके। इमम्=इस प्रत्यक्ष। लोकं= शरीर पर, या पृथिवी लोक। हीनतर = इससे भी अधिक नीच अर्थात् निकृष्ट योनि को। विशन्ति = प्राप्त होते हैं।

अर्थ—मनुष्य रजोगुण और तमोगुण से मोहित होकर केवल संसारिक सुखों के वास्ते ही या संसार में यश, मान और प्रभुत्व प्राप्त करने के अर्थ बहुत से वैदिक कर्म अर्थात् कूप, तालाब, मन्दिर बनवाना अथवा यज्ञ, दान करना इत्यादि कर्मों में फँसकर ऐसा विचार करते हैं कि इनसे उत्तम कोई कर्म नहीं, न अन्य कोई मुक्ति है। जो कुछ है यही कर्म और इसका फल सुख ही है, उनसे अच्छा कर्म और सुख कोई नहीं। वह मनुष्य उस शुभ कर्म का फल किसी ऐसे स्थान पर भोगकर जहां दुख न हो अथवा ऐसे जन्म में जाकर जहां सुख के कारण सब विद्यमान हों। कर्मों का फल समाप्त करके या तो उसी मनुष्य योनि में आ जाता है, अथवा उससे भी किसी नीच योनि में पहुँच जाता है। तात्पर्य यह है कि सकाम

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कर्म का फल सुख भोग कर फिर कर्मों के अनुकूल किसी जन्म में आना होगा।

मंत्र—तपःश्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्षचर्यां चरन्तः। सूर्य्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः पुरुषो ह्यव्ययात्मा ॥ ११ । २० ॥

शब्दार्थ—तपः = स्वाध्याय और सत्य से यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने और चान्द्रायन इत्यादि व्रतों में जो कष्ट होता है उसका नाम तप है। श्रद्धे = नित्य कर्म में श्रद्धा करता है। या = जो। हि = निश्चय करके। उपवसन्ति = इन्द्रियां और मन को रोक कर वास करने। आरण्य = जंगल में। शान्ता = जिसके मन की वृत्तियाँ शान्ति हों। विद्वांस = जो ज्ञान से युक्त हो। भैक्षचर्या = जो भीख माँग कर ही अपना निर्वाह करता हो। चरन्तः = उससे जीवन व्यतीत करते हैं। सूर्यद्वारेण = सूर्य या वेद के अनुकूल कर्म उपासना ज्ञान के द्वारा सुखमा नाड़ी के प्राण त्यागने से। ते = वह। विरजा = मैल से छूटे। प्रयान्ति = प्राप्त होते हैं अथवा पहुँचते हैं। यत्र = जहाँ। अमृत = मुक्ति अथवा परमात्मा है। पुरुष = संसार या शरीर अपने। हि = निश्चय करके अव्ययः = नाश से रहित। आत्मा = सर्वव्यापक परमात्मा है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अर्थ—जो मनुष्य तप अर्थात् सत्य बोलने, प्रत्येक वस्तु के मूल तत्त्व को समझने, इन्द्रियों के विषयों से रोकने, शीतोष्ण भूख प्यास और मानापमान के सहने में जो कष्ट होता है, धर्म में श्रद्धा से उसके लिये पुरुषार्थ करते हुए मग्न रहते हैं और शान्त चित्त होकर आत्मज्ञान के सम्बन्ध, विद्या को जाननेवाले भीख मांग कर भोजन करने वाले और सूर्य के द्वारा अर्थात सुखमा नाड़ी में प्राण त्याग कर फल से पृथक् होने के कारण से उस स्थान पर पहुँचते हैं जहाँ अमृत है; अर्थात मुक्ति अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं। और जो पुरुष अर्थात परमात्मा नाश रहित और सब के भीतर विद्यमान है जो सबका आत्मा होने से सब से सूक्ष्म है, वह उस आत्मा के दर्शन से आनन्द भोगते हैं।

मंत्र—परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन । तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥ १२ । २१ ॥

शब्दार्थ—परीक्ष्य = इस उत्पन्न होने और नाश होने वाले शरीर की सम्पूर्ण अवस्थाओं का विचार कर के। लोकान् = संसार या शरीर को। कर्मचितान्=जो पाप और पुण्य कर्म के फल भोगने के लिये मिले हैं। ब्राह्मण = वेद

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के जाननेवाला अथवा ईश्वरका पूर्ण विश्वासी। निर्वेदम् = संसार के भोग से उदास होकर। आपात = प्राप्त करने। नास्ति = नहीं है। अकृत = किये हुए से पृथक्। कृतेन = कर्म के फल भोग से। तत् = उस के। विज्ञानार्थ = परमात्मा के ठीक प्रकार ज्ञान प्राप्त करने के लिये। स = वह जिज्ञासु। गुरुमेव=गुरु के पास भी। अभिगच्छेत् = जावे। समित्पाणि = हाथ में समिधा लेकर वह गुरु कैसा हो जिस के पास जावे। श्रोत्रयं = जिस ने वेद के द्वारा ब्रह्मज्ञान को सुना भी हो। ब्रह्मनिष्ठम् = जिस का विचार उस में स्थिर भी हो।

अर्थ—ब्राह्मण इस जगत के सम्पूर्ण भोगों को जो उत्पन्न होने और नाश होने के कारण से दुख ही देने वाले हैं। उन से मन को राग द्वेष से पृथक् और ऐसी अवस्था में यह विचार कर के कि यह शरीर और इस के भोग कर्म से प्राप्त और कर्म का फल समाप्त होने पर नाश हो जावेंगे। क्योंकि यह नित्य रहनेवाले नहीं। उस दशा में कर्म फल के विचार को पृथक् करके उस परमात्मा के जानने के वास्ते ऐसे गुरु के पास जिसने नियम पूर्वक वेद से ब्रह्म को सुना हो और उस को मनन निधिध्यासन कर के साक्षात भी कर लिया हो, हाथ में समिधा ले कर जावे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रश्न—जिस मनुष्य ने ब्रह्मचर्याश्रम में वेद-विद्या पढ़ ली हो, उसको गुरुके पास जानेकी क्या आवश्यकता है ?

उत्तर—जब वेद पढ़ते हैं तब श्रवण होता है। जब उसको मनन करते हैं तो बहुत सी शंका उत्पन्न होती हैं। जब निधिध्यासन करते हैं तो बहुत बाधा उत्पन्न होती हैं। इस का उपाय अतिरिक्त ब्रह्म को साक्षात् करने वाले गुरु के ओर से नहीं हो सकता। अतः ब्रह्मचर्याश्रम में जो गुरु होता है वह शब्द ब्रह्म का ज्ञान कराता है अर्थात् वेद को पढ़ाता है। और संन्यास आश्रम में जो गुरु होता है, वह ब्रह्म के दर्शन कराता है।

मंत्र—तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक् प्रशांत-चित्ताय शमान्विताय। येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम् ॥ १३ । २२ ॥

शब्दार्थ—तस्मै=उस ब्रह्मज्ञान के जिज्ञासु ब्राह्मण। स=वह। विद्वान्=ज्ञान वाला आचार्य। उपसन्नाय=पास आए हुए को। सम्यक्=ठीक प्रकार। प्रशांतचित्ताय=जिस का चित्त भोग की इच्छा से नितांत उज्ज्वल हो गया है। येन=जिस प्रकार से। अक्षरम्=नाश रहित। पुरुषं=सम्पूर्ण ब्रह्मांड में रहने वाले परमात्मा को। वेद=जाने, अर्थात् ब्रह्मका ज्ञान सब प्रकार से हो जावे। सत्यम्=नित्य

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रहने वाले अनादि । प्रोवाचं=उपदेश कर के बतावे । तत्त्वतः=तत्त्व के साथ जिस प्रकार की है उसी प्रकार बतावे । ब्रह्मविद्याम्= ब्रह्मके जानने के साधनों और उस के स्वरूप को जिसका नाम ब्रह्मविद्या है ।

अर्थ—जब श्रद्धासे पूर्ण ब्रह्मविद्याका अधिकारी जिसने तपसे अन्तःकरण से मल दोष को दूर कर लिया हो । जिसने ब्रह्मचर्य से अपने भीतर इस प्रकार का प्रकाश उत्पन्न कर लिया हो, जिससे ब्रह्मज्ञान के उपदेश समझ सके । जिसने योग के अष्टाङ्ग के अभ्यास से या वैराग्य के द्वारा मन स्थिर कर लिया हो । जिसके मन में किसी प्रकार की इच्छा शेष न रही हो । जिसका केवल आवरण ही शेष रहा हो । इस प्रकार के ब्रह्मविद्या के समीप आये हुए अधिकारी को वह ज्ञानी आचार्य ब्रह्मविद्या का उपदेश करे ।

प्रश्न—इस बंधन की क्या आवश्यकता है, जो उपदेश सुनने आये, उपदेश करे ?

उत्तर—यदि वैद्य सब रोगियों को एक ही औषधि देने लगे और उनके अधिकार का विचार न करे, तो लाभ के स्थान में हानि अधिक होगी । इसलिये जिसको शिक्षा की अवाश्यकता है, उसे शिक्षा दे । और जिसे कर्मकाण्ड के उपदेश की आवश्यकता है, उसे कर्मकाण्ड का उपदेश

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करे, जिससे उसका मन शुद्ध हो जावे। जिस मन के स्थिर करने के लिये योग के अभ्यास अथवा वैराग्य की आवश्यकता है, उसे उसका उपदेश करे, जो ठीक ब्रह्मज्ञान का अधिकारी हो, उसे ब्रह्मज्ञान का उपदेश करे।

प्रश्न—ब्रह्मज्ञान के अधिकारी सब हैं; देखो जिसको उपदेश मिला है सब ही अपने को ब्रह्म बताते हैं।

उत्तर—यह ब्रह्मज्ञान नहीं, किन्तु तोते की भाँति बिना समझे रटना है। जैसे एक आदमी ने तोते को सिखा दिया गंगाराम नलकी पर नहीं बैठता। तोता वह शब्द सीख गया। एक दिन नलकी पर जा बैठा और कहने लगा गंगाराम नलकी पर नहीं बैठता। इसी प्रकार आजकल के ब्रह्मज्ञानी हैं।

प्रश्न—बताया जाता है कि ब्रह्मज्ञान का अधिकार सब को है। कोई इस जन्म में साधन करते हैं, कोई पूर्व जन्म में कर चुके हैं।

उत्तर—साधन करता हुआ देखने की आवश्यकता नहीं, किन्तु साधनों से युक्त देखने की आवश्यकता है। अतः साधन किये हुए पुरुषों के जो लक्षण हैं, जिसमें वह पाए जावें उसको उपदेश करे। चाहे इस जन्म में साधन किये हों, चाहे पहले जन्म में, लक्षण दोनों में विद्यमान

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

होंगे। जिस अधिकारी में लक्षण पाए जावें उसको उपदेश करना चाहिये, प्रत्येक को नहीं।

प्रथम मुण्डक का दूसरा खण्ड समाप्त हुआ।

अथ द्वितीय मुण्डक-प्रथम खण्ड।

मंत्र—तदेतत्सत्यं—यथा सुदीप्तात्पावकाद्विस्फुलिङ्गाः। सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः। तथाक्षरात् पुरुषः सौम्य ? भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति॥ १। २३॥

शब्दार्थ—तत्=उस कारण के विचार। एतत्=यह बात। सत्यम्=ठीक है। यथा=जैसे भले प्रकार जलती हुई। पावकात्=अग्नि से। विस्फुलिंग=चिनगारियाँ। सहस्रशः=अनन्त सहस्रों लक्षों। प्रभवन्ते=उत्पन्न होते हैं। सरूपा=उपादान कारण के अनुकूल। तथा=ऐसे ही। अक्षरात्=नाश रहित कारण प्रकृति से। पुरुषः=यह सम्पूर्ण शरीर हाथ पांव वाले। सौम्यः=शान्ति स्वरूप जिज्ञासु। भावा=यह सब चैतन्य जीव जो दृष्टि पड़ते हैं। प्रजायन्ते=उत्पन्न होती हैं। तत्र=उसमें। च एव=और भी। अपियन्ति=प्रवेश हो जाती हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अर्थ—इस दृष्टांत से मालूम होता है यह अक्षर शब्द नाश रहित प्रकृति के लिये प्रयोग हुआ है। इस में तो किसी को संदेह नहीं कि जिस प्रकार भले प्रकार प्रज्वलित अग्नि से चारों तरफ चिनगारियां फैलती हैं अथवा उत्पन्न होती हैं ऐसे ही इस कारण प्रकृति से प्रत्येक शरीर और अन्य वस्तु की सत्ता प्रकाशित होती हैं और नाश हो कर उसी में प्रवेश हो जाती हैं।

प्रश्न—अक्षरसे यहां पर प्रकृति क्यों मानी, परमात्मा क्यों न माना ?

उत्तर—दृष्टांत उपादान कारण का है जिससे स्पष्ट है कि उपादान कारण प्रकृति लेना चाहिये। दूसरे सरूपा शब्द आया है जो प्रकृति से ही सम्बन्ध बताता है, जैसा कि श्रुति सूत्र उपनिषद् में दिखाया है।

प्रश्न—यदि ब्रह्म ही जगत् का उपादान कारण स्वीकार कर लें तो क्या हानि होगी ?

उत्तर—ब्रह्म चेतन्य है, उस को उपादान कारण मान कर कोई जड़ बस्तु संसार में दृष्टि न आवेगी। ब्रह्म सुख स्वरूप है, उस के उपादान कारण होने पर संसार में कोई दुखी नहीं रहेगा। निदान सम्पूर्ण शास्त्र, वेद और उपनिषद् व्यर्थ हो जावेंगे। क्योंकि जब एक ही चेतन्य से सब बनी हैं, तो ज्ञान का कोई कारण ही न होगा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मन्त्र—दिव्यो ह्यमूर्त्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः । अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात् परतः परः ॥ २ । २४ ॥

शब्दार्थ—दिव्यः=वह परमात्मा जो इस जगत् का बनाने वाला है प्रकाश स्वरूप है। हि=निश्चय कर के। अमूर्तः=मूर्ति से रहित। पुरुषः=वह सब में व्यापक परमात्मा है। स=वह। बाह्याभ्यन्तर=वह बाहर और भीतर दोनों ओर विद्यमान है। हि=निश्चय करके। अजः=अजन्मा। अप्राणः=प्राण रहित। हि=निश्चय कर के। अमनः=मन से रहित। शुभ्रो=शुद्ध है। हि=निश्चय कर के। अक्षरात्=नाश रहित प्रकृति। परतः=जो परे है। परः=उस से भी परे परमात्मा है।

अर्थ—परमात्मा जो प्रकृति से जगत् बनाता है, प्रकाश स्वरूप है और निश्चय करके अमूर्त्ति है। उस की कोई मूर्त्ति अथवा आकृति नहीं और बाहर भीतर सब जगह विद्यमान है। सब से बड़ा होके सब से बाहर और सूक्ष्म होने के कारण सब में व्यापक और अजन्मा है और सर्व व्यापक है और निश्चय करके कारण प्रकृति जो नाश रहित है तथा सूक्ष्म जीवात्मा से भी सूक्ष्म वह परमात्मा है। इस मन्त्र ने स्पष्ट कर दिया कि न तो परमात्मा की कोई मूर्त्ति

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हो सकती है, क्योंकि मूर्त्ति उसे कहते हैं जिस के अवयव जड़ हों और परस्पर मिले हुए हों। अतः जिस की मूर्त्ति है वह संयोगी तथा जड़ है। परमात्मा नित्य और चेतन्य है वह न तो स्थूल (संयोगी) हो सकते हैं और न जड़, क्योंकि संयुक्त वस्तु उत्पन्न होने वाली होती है। निदान परमात्मा को मूर्त्तिमान नहीं कह सकते। निस्संदेह प्रत्येक मूर्त्ति का स्वामी होने से उसे मूर्ति वाला कह सकते हैं। परन्तु उसका अपना शरीर या मूर्त्ति कोई नहीं।

मन्त्र—एतस्मात् जायते प्राणोमनः सर्वेन्द्रियाणि च। खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी॥ ३। २५॥

शब्दार्थ—एतस्मात्=इस परमात्मा से जिसका वर्णन उपरोक्त हुआ। जायते–उत्पन्न हुई हैं। प्राणः=प्राण। मनः=मन अर्थात् अन्तःकरण। सर्वेन्द्रियाणि=सर्व इंद्रियाँ। च=और। खम्=आकाश। वायु=वायु। ज्योति=अग्नि। आपः=जल। पृथिवी=भूमि। विश्वस्य=सब जगत् के चराचर। धारिणी=धारण करने वाली।

अर्थ—परमात्मा के इन्द्रियाँ क्यों नहीं, इसके लिये बताते हैं कि उस परमात्मा की शक्ति से यह सब प्राण और इन्द्रियाँ उत्पन्न हुई हैं। और उसी से आकाश, वायु,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अग्नि, जल उत्पन्न हुए हैं। उसी से सम्पूर्ण जगत् को धारण करने वाली पृथिवी उत्पन्न हुई। जब कि परमात्मा से यह सब उत्पन्न हुए हैं तो परमात्मा नित्य है, नित्य में उत्पन्न होने वाले गुण कैसे उत्पन्न हो सकते हैं। क्योंकि परमात्मा की भी इन्द्रियाँ स्वीकार की जावें, तो वह इन्द्रियाँ उत्पन्न वाली होने से किसी दूसरे पैदा करने वाले के आधीन होंगी। यदि उसके उत्पन्न करने वाला कोई इन्द्रिय वाला होगा, तो उसकी इन्द्रियाँ भी उत्पन्न होने वाली होंगी, उनके उत्पन्न करने वाला और कोई होना चाहिये, इस कारण क्रम दोष लग जायगा।

प्रश्न—यदि नित्य में अनित्य के गुण नहीं आ सकते, तो जीव को इन्द्रियों की क्या आवश्यकता हुई ? क्योंकि जीव भी नित्य ही है।

उत्तर—जीव एक देशी है, उसको अपनी सीमा से बाहर की वस्तुओं के देखने के लिये इन्द्रियों की आवश्यकता है। और ज्ञान जो बाहर की वस्तुओं का होता है उसके संस्कार मन पर होते हैं। और जीवात्मा अल्पज्ञता के कारण अपने में विचारता है।

मन्त्र—अग्निर्मूर्द्धा चक्षुषो चन्द्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः। वायुः प्राणो हृदयं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा ॥ ४ । ६२ ॥

शब्दार्थ—अग्निः=अग्नि । मूर्द्धा=उसके सिर के समान है, जिस प्रकार सिर सब से उत्तम है, इसी प्रकार सतोगुणी सिर का काम देती है अथवा जिस प्रकार हम मुख में दांतों से चबाकर सूक्ष्म करते हैं, परमात्मा अग्नि से पुरुष को परमाणु रूप में ले जाते हैं । चक्षुषो=इस विराट, के नेत्र के स्थान में । चन्द्रसूर्यौ=चन्द्र और सूर्य हैं । दिशा=दिशा जो आकाश में है । श्रोत्रे=वह श्रवण का काम देती हैं । वाग्=उसकी वाणी के स्थान में जिससे उपदेश करता है । विवृतः=फैला हुआ । वेदाः=ऋग्, यजुः, साम और अथर्ववेद हैं, जिस प्रकार वाणी से उपदेश करते हैं, परमात्मा वेदों के द्वारा उपदेश करते हैं, परमात्मा की वाणी के काम वेद से निकलते हैं । वायु=हवा । प्राणा=परमात्मा के प्राणों का काम देती है । हृदयम्=परमात्मा के रोहे के स्थान में । विश्वम्=जगत् । अस्य=उसकी है । पद्भ्यां=पांव के स्थान में । पृथिवी=भूमि है । हि=निश्चय करके । एष=वह परमात्मा । सर्वभूतन्तरात्मा=सम्पूर्ण भूतों के भीरत व्यापक होने वाला आत्मा है ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अर्थ—अब उस परमात्मा का विराट रूप में उपदेश करते हैं कि अग्नि उसके मुख का काम देती है। और नेत्रों का काम सूर्य और चन्द्रमा देते हैं। और कानों का काम आकाश में रहने वाली दिशाएं देती हैं। और उसकी वाणी का काम वेद देते हैं; जैसे वाणी से जो कुछ उपदेश किया जाता है, वे उपदेश का काम परमात्मा वेदों से लेते हैं। और वायु प्राणों का काम देती है। और हृदय का काम सम्पूर्ण जगत् देता है। और पांव का काम पृथिवी देती है; वह इन सब के भीतर रहने वाला परमात्मा है। जिस प्रकार शरीर के भीतर नियम पूर्वक हरकत होने से जीवात्मा के होने का प्रमाण मिलता है; इसी प्रकार संसार का नियम पूर्वक क्रियावान होना परमात्मा की सत्ता का प्रमाण है। ऐसी कोई वस्तु नहीं, जो स्वयं कोई भी विकार कर सके, सब विकार परमात्मा के नियमसे होते हैं। वह प्रत्येक वस्तु के भीतर रहकर उसको नियम से चला रहा है।

मंत्र—तस्मादग्निः समिधो यस्य सूर्यः सोमात् पर्जन्य ओषधयः पृथिव्याम्। पुमान् रेतः सिञ्चति योषितायां बह्वीः प्रजाः पुरुषात् सम्प्रसूताः ॥ ५। २७ ॥

शब्दार्थ—तस्मात्=परमात्मा से। अग्निः=स्थूल दशा में। समिधा=चलने की क्रिया वाली। यस्य=जिसका।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सूर्य=सूर्य है। सोमात = चन्द्रमा का अग्नि से। पर्जन्यः= वर्षा बरसने वाला मेघ होता है और। ओषधयः = वर्षा से जो अन्न और सम्पूर्ण औषधियां उत्पन्न होती हैं। पृथिव्याम् = जब वह मेघ बरस कर पृथिवी पर गिरता है। पुमान = मनुष्य। रेतः = वीर्य को। सिञ्चति=सींचता है। योषितायां = स्त्री के भीतर। बहो प्रजा = बहु प्रकार की प्रजा। पुरुषात् = पुरुष परमात्मा से। सम्प्रसूता = उत्पन्न हुई है।

अर्थ—उससे अग्नि स्थूल दशा में जिस को उभारने वाला सूर्य है उत्पन्न हुआ। क्योंकि अग्नि जो शरीर, इंद्रिय और विषय रूपसे तीन प्रकार की हुई, वह परमात्मा के कारण से हुई। और चन्द्र में रहने वाली अग्नि से, वायु लगने से एकत्र होकर बरसने वाले मेघ उत्पन्न हुए। और जब मेघ पृथिवी पर गिरे, तो उसके गिरने से जो वर्षा हुई, उससे औषधियां अर्थात अन्न उत्पन्न हुआ। और अन्न के खाने से मनुष्य में वीर्य उत्पन्न हुआ जब वह वीर्य पुरुष से स्त्री में पहुंचा, तो ऋतुदान के द्वारा बहु प्रकार की प्रजा होगई। प्रयोजन यह कि जो संसार में क्रिया नियम से हो रही है और जो कुछ प्रबन्ध चल रहा है, वह सब का सब परमात्मा की दी हुई हरकत से चल रहा है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रश्न—क्या परमात्मा क्रियावान है ? जो दूसरे को क्रिया (हरकत) दे रहा है।

उत्तर—सर्वव्यापक परमात्मा किस प्रकार क्रिया कर सकता है। क्योंकि एक स्थान छोड़कर दूसरे स्थान पर जाने का नाम क्रिया है। परमात्मा कहां नहीं जो उस स्थान से दूसरे स्थान पर जावे। वह स्वयम् क्रिया नहीं करता, परन्तु दूसरों को क्रिया दे सकता है।

प्रश्न—यह किस प्रकार सम्भव है कि अचल वस्तु दूसरी वस्तु को चला सके ?

उत्तर—जिस प्रकार चुम्बक पत्थर स्वयम् अचल होता हुआ लोहे को हरकत दे सकता है; इसी प्रकार परमात्मा भी स्वयं अचल होता हुआ दूसरी वस्तुओं को चला सकता है।

मंत्र—तस्माद्दचः साम यजूंषि दीक्षा यज्ञाश्च सर्वे क्रतवो दक्षिणाश्च। संवत्सरश्च यजमानश्च लोकाः सोमो यत्र पवते यत्र सूर्यः ॥ ६। २८ ॥

शब्दार्थ—तस्मात्=उस परमात्मा से। ऋचः=ऋग्वेद के मंत्र उत्पन्न हुए। साम=उसी से सामवेद उत्पन्न हुआ। यजूंषि=यजुर्वेद। दीक्षा=ब्रह्मचर्याश्रम के धारण करने पर जो उपदेश दिया जाता है और जो चिन्ह नियत किये जाते ह। यज्ञाः=अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध जितने यज्ञ हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

च=और। क्रतवः=दूसरी प्रकार के यज्ञादि कर्म। दक्षिणा= जो यज्ञ करनेवालों को दक्षिणा मिलती है अथवा जो कर्म का फल है वह भी दक्षिणा ही है। च=और। यजमानः= यज्ञ कर्म के करनेवाले। सम्वतसरम्=रात, दिन, मास, वर्ष आदि समय के भाग। च=और। पवने=प्रकाश करे। यत्र=जहाँ। सूर्यः=सूर्य प्रकाश करे। सोम=चन्द्र प्रकाश करे।

अर्थ—अब बताते हैं कि कर्म करता हुआ किस प्रकार कर्म के अभिमान से बचा रहे कि ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद सब परमात्मा ने ही बनाये हैं। और यज्ञ की सामिग्री और यज्ञ के नियम और यज्ञ में दक्षिणा देनेवाली वस्तुएँ यह सब उस परमात्मा ने बनाई हैं। रात्रि दिवस और यज्ञ करने में जिन स्थानों को चन्द्रमा प्रकाश करता है, जिनको सूर्य प्रकाश करता है वह सब ही परमात्मा की बनाई हुई हैं। उनमें कौन सी वस्तुयें हैं, जिनको मैं अपनी समझकर अभिमान करूँ। निदान ऐसा विचार करके जब यज्ञ करता है, तो केवल अपने कर्त्तव्य को जो परमात्मा ने नियत कर दिया है, पूर्ण करता है, वह अभिमान से बच रहता है।

मंत्र—तस्माच्च देवा बहुधा सम्प्रसूताः साध्या मनुष्याः पशवो व्यांसि। प्राणापानौ व्रीहियवौ तपश्च श्रद्धा सत्यं ब्रह्मचर्यं विधिश्च ॥ ७ । २९ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शब्दार्थ—तस्मात्=उसी जगत् कर्त्ता परमात्मा के बनाने से। देवा=देव ऋषि लोक जो बिना माता पिता आदि के संसार में उत्पन्न होता है। बहुधा=बहु प्रकार के। सम्प्रसूता=उत्पन्न हुए हैं। साध्या=इसी जन्म में उन्नति प्राप्त करने योग्य दूसरी प्रकार के देवता। मनुष्या=सामान्य बुद्धि वाले। पशव=पशु। व्यांसि=पक्षी। प्राणापानौ=प्राणापानादि वायु। व्रीहियवौ=अग्निहोत्र करने योग्य चावल यव। तपः=शरीर के दर्शन के लिये परिश्रम। श्रद्धा=श्रद्धा जो शुभ काम और विद्वानों के भीतर एक प्रकार की आदर की दृष्टि होती है। सत्यं=आत्मज्ञान के अनुकूल कहना। ब्रह्मचर्यं=वेद के नियमानुकूल इन्द्रियों का रोकना। विधिश्च=कि इस प्रकार करो, ऐसा मत करो।

अर्थ—उसी परमात्मा से आदि संसार में बहु प्रकार के देव, ऋषि जो बिना माता पिता के उत्पन्न हुए, उसी परमात्मा से वह ऋषि जो इसी जन्म के कर्मों से मुक्ति प्राप्त करने के योग्य हैं, उत्पन्न हुए, उसी परमात्मा से सर्व मनुष्य साधारण बुद्धि रखने वाले उत्पन्न हुए और परमात्मा ने चराचर पशु, पक्षी इत्यादि जीव उत्पन्न किये, उसी परमात्मा से प्राण अपान इत्यादि अनेक प्रकार के अन्न उत्पन्न हुए, उसी परमात्मा से तप करने की शक्ति मनुष्यों को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्राप्त हुई, उस के उपदेश से श्रद्धा उत्पन्न हुई, उस ने ही संसार में सत्यव्रत का अभ्यास दिया, उसी ने ब्रह्मचर्याश्रम के नियमों का वेद द्वारा उपदेश किया और उसी ने प्रत्येक संकलन विकलन की आज्ञा जीवों को देकर इस योग्य बनाया कि वह अपने जीवन को ठीक प्रकार चला सकें। जब सब कुछ परमात्मा ने दिया है, तो वह कौन सी वस्तु है जिस पर हम अभिमान करें। वह मनुष्य मूर्ख हैं, जो संसार में दूसरों को नीच समझते हैं वह मनुष्य मूर्ख हैं, जो कर्म पर अभिमान करते हैं। सब से अधिक वह मनुष्य मूर्ख हैं, जो अपने को दूसरों से उत्तम विचार करते हैं। जिसमें जो कुछ गुण हैं वह परमात्मा से हैं और जो कुछ दोष हैं, वह प्रकृति के संग से। जीव तो व्यर्थ अभिमान करने वाला है।

मन्त्र—सप्त प्राणाः प्रभवन्ति तस्मात्सप्तार्चिषः समिधः सप्त होमाः। सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणाः गुहाशया निहिताः सप्त सप्त ॥ ८। ३० ॥

शब्दार्थ—सप्त प्राण=सात प्राण सिर में वास करने वाले, नेत्र में वास करने वाले, कान में वास करने वाले दो, नाक में दो, मुख में एक। प्रभवन्ति=उत्पन्न होते हैं। तस्मात्=उस परमात्मा से। सप्तार्चिषः=सात प्रकार की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

किरणें जो सात प्रकार के पृथक् पृथक् देशों को प्रकाश करती हैं। समिधः=इस अग्नि को उभारने वाली समिधा। सप्तहोमा=सात प्रकार के विषयों के ग्रहण वाली शक्ति। सप्त=सात। इमे=प्रत्यक्ष। लोका=देखने का कारण अथवा जो दृष्टि पड़ते हैं शरीर मन में। चरन्ति=क्रिया करते हैं। प्राणः=प्राण। गुहाशया=जो सोते समय अन्तःकरण के भीतर स्थिर होते हैं। निहिता=स्थिर रहते हुए। सप्त सप्त=सात सात।

अर्थ—ज्ञानेन्द्रियां और उस में काम करने की शक्ति देने वाले सात प्राण और उनकी सहायक शक्तियां और कुल प्रबन्ध जो इस शरीर के भीतर स्थित है, जिस से ज्ञानेन्द्रियां और उनकी प्रकाश शक्तियां और उन के सहायक सब परमात्मा ने ही बनाए हैं।

प्रश्न—सात प्राणों से क्या प्रयोजन है ?

उत्तर—सिर के भीतर जो ज्ञानेन्द्रियों के सात छिद्र हैं, उनको सहायता देनेवाली जो प्राण-शक्ति है, वह सात छिद्रों से सम्बन्ध रखते हुए सात प्राण कहलाते हैं।

मन्त्र—अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वेऽस्मान् स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्वरूपाः। अतश्च सर्वा ओषधयो रसश्च येनैष भूतैस्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा ॥९॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शब्दार्थ—अतः=उस परमात्मा से। समुद्रा=सम्पूर्ण समुद्र। गिरयः=समस्त पहाड़। सर्वे=सब। अस्मात=उस परमात्मा से। स्यन्दन्ते=बह रहे हैं। सिंधवः=समस्त नद्यादि। सर्वरूपा=उत्तर से दक्षिण को जानेवाली, पूर्व से पच्छिम को जानेवाली, पच्छिम से पूर्व को जानेवाली, दक्षिण से उत्तर को जानेवाली। अतः=उस परमात्मा से। च=और। सर्वा=सब। ओषधय=औषधि अन्न इत्यादि। रसश्च=सम्पूर्ण रस। येन=जिससे। एव=वह परमात्मा। भूतै=पंचभूतों से बने हुए अस्थि, मांस, चर्बी इत्यादि से। तिष्ठते=शरीर में स्थित होता है। हि=निश्चय करके अन्तरात्मा=जो शरीर के भीतर रहनेवाला जीवात्मा है।

अर्थ—उस परमात्मा ने ही सम्पूर्ण समुद्र जो संसार को घेरे हुए हैं, इसी लोक के नहीं, किंतु जितने सितारे ब्रह्माण्ड में हैं उनमें जितने समुद्र हैं, पहाड़ हैं और जितने बहने वाले (नद) नदी हैं, चाहे वह उत्तर से दक्षिण को जाने वाले हों अथवा दक्षिण से उत्तर को, चाहें पच्छिम से पूर्व को और पूर्व से पच्छिम को सब उसी परमात्मा से उत्पन्न हुई हैं। और उसी परमात्मा से प्रत्येक प्रकार का अन्न और औषधियां उत्पन्न हुई। और उसी से भीतर जितने रस उत्पन्न होते हैं जिससे अस्थि, मांस,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चर्बी इत्यादि शरीर के भाग बने हैं, यह सब उसी परमात्मा से बने हैं, जिस शरीर के भीतर आत्मा रहता है, वह सब परमात्मा ने ही बनाया है। जिस देश में रहता है, वह देश भी परमात्मा ने बनाया है। जिस महाद्वीप में हैं वह परमात्मा ने ही बनाया है, जिस भूमि पर वास करते हैं, वह परमात्मा ने ही बनाई है। जिस ब्रह्माण्ड के बहुत छोटे भाग हैं, हमारी भूमि है, वह सब परमात्मा ने ही बनाई है। पहाड़ और समुद्र उसी ने बनाए हैं। भला उससे पृथक् होकर जीव कहां शांति पा सकता है।

मंत्र—पुरुष एवेदं विश्वं कर्म तपो ब्रह्म परामृतम्। एतद्यो वेद निहितं गुहायां सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरतीह सोम्य॥ १०। ३२॥

शब्दार्थ—पुरुषः=परमात्मा से। एव=ही। इदं=यह। विश्वं=जगत्। कर्म=जो कुछ क्रिया की जाती। तपः=ज्ञान। ब्रह्म=वेद। परामृतम्=महान अमृत अर्थात् नाश रहित। एतद्=इस बात को। यो=जो मनुष्य। वेद=जानता है। निहितं=स्थित होकर। गुहायां=भीतर आधे आकाश में। सः=वह मनुष्य। अविद्या=ग्रंथिम्=उलटे ज्ञान की ग्रंथि को जिससे जीव बंधा हुआ है। विकिरति=काट डालता है। इहि=इस संसार में। सौम्य=हे प्रिय पुत्र!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अर्थ—यह सब जगत् परमात्मा के रहने का स्थान है, इसके भीतर बाहर परमात्मा ही है। जो कुछ कर्म और ज्ञान है, वह सब उस परमात्मा का ही है, जो आदमी के आकाश में उनको स्थित करके इस बात को जान जाता है, वह अविद्या की गांठ को जिससे यह जीव बंधा है, काट कर मुक्त हो जाता है। जब तक परमात्मा के स्वरूप में इस सारे जगत् को और जगत् में परमात्मा के स्वरूप को नहीं देखता। जैसे घड़े के भीतर आकाश और आकाश के भीतर घड़ा है। ऐसे ही सब स्थान में परमात्मा व्यापक है।

इति द्वितीय मुण्डक का प्रथम खण्ड समाप्तः।

अथ द्वितीय मुण्डक-द्वितीय खण्ड।

मंत्र—अविः सन्निहितं गुहाचरन्नाम महत्पदमत्रैतत्समर्पितम्। एजत्प्राणन्निमिषच्च यदेतज्जानथ सदसद्वरेण्यं परं विज्ञानद्यद्वरिष्ठं प्रजानाम् ॥१।३३॥

शब्दार्थ—अविः=जो योगी और ज्ञानी मनुष्यों के शुद्ध और स्थिर मन में प्रकाश होता है। सन्निहितं=जो सर्वदा उनको निकट ही मालूम होता है। गुहाचरत=

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जो ज्ञानियों की बुद्धि में स्थित होता है। नाम = प्रसिद्ध है। महत = सब से बड़ा। पदम् = जो प्राप्त होने योग्य। अत्र = उस अपने अन्तःकरण में मिलने वाले ब्रह्म में। एतत = यह मन। समर्पितम् = ठीक प्रकार लगाया हुआ। राजत् = कांपने वाले। प्राणात = प्राणों के द्वारा मनुष्य और पशु इत्यादि। निमिषत = प्राण की चाल से शून्य मृत्यु अवस्था को पहुंचा हुआ। च = और दूसरे अन्य जीव पत्थर वृक्ष इत्यादि। असत् = जो संसारी मनुष्यों को सुख मालूम हो। वरेण्यं = ग्रहण करने या जानने योग्य। परम् = सब से सूक्ष्म। विज्ञानाद् = प्राकृत पदार्थों के ज्ञान से। यत = जो। वरिष्ठम् = बहुत ही उच्च है। प्रजानाम् = मनुष्यों के लिये।

अर्थ—जिस ब्रह्म की शक्ति से यह जगत् उत्पन्न होता और स्थित रहता व नाश होता है, यद्यपि वह सब से बड़ा है, तो भी उसका प्रकाश साफ और स्थित मन में योगियों को मालूम होता है। जिस प्रकार सूर्य का प्रतिबिम्ब सब देश में पड़ता है, परन्तु जहां निर्मल जल या साफ शीशा हो वहीं दृष्टि आता है। इसी प्रकार परमात्मा सर्वत्र विद्यमान है, परन्तु उसका प्रकाश योगियों और ज्ञानियों के हृदय में होता है, अज्ञानी पुरुष सहस्रों जन्म

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यत्न करने पर उसको नहीं जान सकते। जैसे नेत्र में अंजन होता है, तो जिसके हाथ में साफ और सुथरा शीशा हो और प्रकाश में खड़ा हो, तो वह प्रत्येक स्थान पर नेत्र में अंजन को देख सकता है, परन्तु जिसके हाथ में शीशा नहीं और जो अँधेरे में खड़े हैं, या शीशा मैला बहुत हिल रहा है, वह सम्पूर्ण संसार में घूम कर भी सुरमा को नहीं देख सकता। प्रयोजन यह है कि ब्रह्म यदि दृष्टि पड़ता है, तो योगियों की बुद्धि में दृष्टि आता है और किसी जगह जीवन भर खोज करने से नहीं मिल सकता। दूसरा कोई सुख चाहे वह सांसारिक पदार्थों के प्राप्त हो ने से हो, चाहे प्राकृति पदार्थों के चमत्कार से प्राप्त हो, किसी दशा में उस सुखके सामने नहीं आ सकता, जो सुख परमात्मा के दर्शन से प्राप्त होता है। वह चक्रवर्ती राज्य और संसारिक प्रत्येक सुख से करोड़ों अरबों गुणा उत्तम है। उस के सामने सब सुख तुच्छ हैं। जो इस बातको जानता है, उसको कोई कष्ट हो ही नहीं सकता।

मन्त्र—यदर्चिमद्यदणुभ्योऽणु यस्मिन्लोका निहिताः लोकिनश्च। तदेतदक्षरं ब्रह्म स प्राणस्तदु वाङ्मनः तदेतत्सत्यं तदऽमृतं तद्वेद्धव्यं सौम्य विद्धि ॥ २। ३४ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शब्दार्थ—यदर्चिमतः=जो प्रकाशक का भी प्रकाश है। यत्=जो। अणुभ्योऽणु=सूक्ष्म से सूक्ष्म है। यस्मिन्=जिस के भीतर। लोका=दृष्टि आने वाले पृथिवी, चन्द्र, सूर्य इत्यादि। निहिता=स्थित है। लोकिनः=जो मनुष्यों में रहने वाले मनुष्य और पशु इत्यादि हैं। च=और। तत्=वह। एतत्=यह। अक्षरं=नाश रहित। ब्रह्म=परमात्मा है। स=वही ब्रह्म। प्राणः=सब जगत् के प्राण हैं जो। तत=वह है। वाङ्=वाणी। मनः=मन है। तत्=वह। एतत्=यह एक रहने वाला है। तत्=वह। अमृतम्=अमृत। तत्=वह। बोद्धव्यम्=मन से जानने योग्य। सौम्य=प्यारे पुत्र। विद्धि=समझ ले।

अर्थ—जो प्रकाश करने वालों को भी प्रकाश करता है, जो परमात्मा सूक्ष्म में भी सूक्ष्म, छोटे से छोटा है। जिसमें सम्पूर्ण पृथिवी, चन्द्रमा, सूर्य इत्यादि लोक और उन लोकों में वास करनेवाले मनुष्य पशु स्थित हैं, वही नाश रहित ब्रह्म सब से बड़ा और सब में व्यापक परमात्मा है। वह सम्पूर्ण जगत् के प्राणों का प्राण और वाणी की वाणी और मन का मन है। और वही तीन काल एक सा रहनेवाला और मौत के भय से निर्भय नित्य मुक्त है अर्थात् अमृत है। और वही निशाना है जिस पर काम

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करने की ज़रूरत है । इस बात को प्रिय पुत्र इस प्रकार जान ले ।

मंत्र—धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासा निशितं सन्धयीत । आयम्य तद्भावगतेन चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षरं सोम्य विद्धि ॥ ३ । ३५ ॥

शब्दार्थ—धनु=कमान जिससे बाण चलाया जाता है । गृहीत्वा=पकड़ कर । ओपनिषद्=जो उपनिषदों में । अर्थात् ब्रह्मविद्या की पुस्तकों में दिखाया है । महास्त्रं= जो बहुत बड़ा अस्त्र है । शरम्=बाण । हि=निश्चय करके । उपास=जो ब्रह्म और जीव में जो ज्ञान की दूरी इसको ध्यान से दूर करके । निशितम्=तेज करके । संधयीत=ठीक लक्ष्य ताक कर । आयम्य=इस कमान को खींच कर । तद्भावगतेन=ब्रह्म की भावना से युक्त । चेतसा=मन के द्वारा । लक्ष्यं=लक्ष । तत्= वह । एतत्=है । अक्षरं=नाश रहित । सोम्य=प्रिय शिष्य । विद्धि—जान ।

अर्थ—उपनिषद् का बताया हुआ कमान हाथ में पकड़ कर जो बहुत बड़ा शस्त्र है, उसमें उपासना के बाण खूब तेज करके रक्खो । और इस धनुष को खींच कर ब्रह्म के प्रेम से मस्त हुए मन के साथ इस लक्ष पर जो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अक्षर ब्रह्म के नाम से पुकारा जाता है, ठीक ठीक आगे लिखे हुए विधान पर निशाना लगाओ। हे प्रिय शिष्य ! इस नियम को समझो।

मंत्र—प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते । अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥ ४। ३६ ॥

शब्दार्थ—प्रणव = ओंकार यह एक । धनुः = धनु है। शर = शर। आत्मा = आत्मा है। अप्रमत्तेन = आलस को त्याग और सावधान होकर । वेद्धव्यं = इस वाण को निशाना पर लगाना चाहिये । शरवत् = तीर की भांति। तन्मयः = अपने विचार को बना कर । भवेत् = हो जावे।

अर्थ—ओंकार जो परमात्मा का सर्वोत्तम नाम सब से बड़ा कहाता है, वह धनुष है और आत्मा निश्चय तीर है और जिस लक्ष पर वाण लगाना है, वह ब्रह्म अर्थात् परमात्मा है। अर्थात् ओ३म् के द्वारा आत्मा को परमात्मा में लगाना है। क्योंकि धनुष के द्वारा वाण लक्ष पर लगा करता है, परन्तु किस प्रकार इस वाण को लगाना चाहिये कि बहुत ही सावधानी से, क्योंकि बेपरवाही से यह वाण नहीं लग सकता किंतु आलस को त्याग, अपने कर्त्तव्य

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पर आरूढ़ होकर ओंकार के द्वारा जीवात्मा को परमात्मा की ओर लगाना चाहिये। जिस प्रकार धनुष से छूटा बाण सीधा लक्ष की ओर जाता है। बीच में इधर उधर नहीं जाता, इसी प्रकार आत्मा को सीधा परमात्मा की ओर लगाना चाहिये, इधर उधर नहीं भटकना चाहिये ताकि यह आत्मा परमात्मा जैसा हो जावे, जैसे परमात्मा सत्‌चित आनन्द है, इसी प्रकार जीव भी आनन्द प्राप्त करके सच्चिदानन्द बन जावे। क्योंकि सत्‌चित तो आत्मा पूर्व से ही है, आनन्द परमात्मा से नैमित्तिक प्राप्त हुआ। अतः जीवात्मा परमात्मा जैसा सच्चिदानन्द बन जावेगा।

प्रश्न—क्या जीव ब्रह्म बन सकता है?

उत्तर—जो बनता है वह ब्रह्म कहला ही नहीं सकता। जीव ब्रह्म नहीं बनता, किन्तु उसमें ब्रह्मरूपता अर्थात् ब्रह्म जैसे गुण विद्यमान हो जाते हैं।

प्रश्न—क्या जीव ब्रह्म की भांति सर्वव्यापक हो जाता है।

उत्तर—नहीं केवल ब्रह्म का आनन्द गुण मिल जाने से सत्‌चित, जीवात्मा ब्रह्मरूप कहलाता है, ब्रह्म नहीं। जैसे लोहा अग्नि में गर्म होकर लाल हो जाता है, उस समय लोहा अग्नि रूप तो हो जाता है, परन्तु अग्नि नहीं होता। इसी प्रकार जीव में आनन्द के आ जाने से सच्चि-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दानन्द हो जाता है, परन्तु सर्वव्यापक इत्यादि गुण नहीं आते; केवल आनन्द गुण आता है।

मंत्र—आस्मिन् द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षमोतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः। तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुंचथ अमृतस्यैष सेतुः॥

शब्दार्थ—अस्मिन = परमात्मा के भीतर। द्यौः = सूर्य, चन्द्र, सब लोक अर्थात् ग्रह। पृथिवी = भूमि। अन्तरिक्ष = जिसके सहारे वायु और मेघ रहते हैं अर्थात् आकाश ओतम् = जिस प्रकार माला की गुरियों में तागा होता है, ऐसे पिरोया हुआ। मनः = मन। सह प्राणौ = सम्पूर्ण प्राणों के साथ। च = और। सर्वे = सब इन्द्रियां इत्यादि के। तम् = उस। एव = ही। एक = एक को। जानथ = पुरुषार्थ कर के साधनों के द्वारा से जानो। आत्मानम् = एक परमात्मा है। अन्य = दूसरे। वाचः = वाणी। विमुञ्चथ = नितान्त त्याग दो। अमृतस्य = मुक्ति का। एष = ही। सेतु = फल है।

अर्थ—जिस परमात्मा में सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, तारे इत्यादि समस्त लोक रहते हैं, जिस के भीतर आकाश रहता है। प्रयोजन यह है जो पृथिवी चन्द्र, सूर्य, तारे, आकाश इत्यादि के योग से भी बड़ा है और जिस में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सम्पूर्ण इन्द्रियों के साथ प्राण पिरोये हुए हैं, जिस प्रकार तागे में माला के मनके; हम उस एक को पुरुषार्थ करके जानें। क्योंकि वे आत्मा ही संसार में सागर से पार उतारने के लिये पुल है। जो इस आत्मा को नहीं जानता, वह दुःखसागर से कभी पार नहीं हो सकता। क्योंकि जिस प्रकार अंधकारको दूर करने के लिये प्रकाश के अतिरिक्त अन्य साधन नहीं। शीत को दूर करने के लिये अतिरिक्त गरमी के दूसरा उपाय नहीं; प्रकृति जड़ अर्थात् परतंत्र होने से दुःख स्वरूप ही है, जिस में दुःख ही है, उस से दुख किस प्रकार दूर हो सकता है। जीवात्मा दुख सुख दोनों से पृथक् है, वह स्वभाविक सुखी है न दुखी। इसलिये जीवात्मा से दुख दूर होना भी सम्भव नहीं, केवल परमात्मा ही आनन्द स्वरूप है, उन्हीं से दुःख छूट सकता है। इसलिये परमात्मा को जानने के अतिरिक्त और सब बातों को त्याग दो।

मन्त्र—अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यः। स एषोऽन्तश्चरते बहुधा जायमानः। ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानं स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात्॥ ६। ३८॥

शब्दार्थ—अरा इव=जैसे पुट्ठियां पहिये की। रथ-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नाभौ=गाड़ी के पहिया की वेदी में इधर उधर लगी होती है। संहता यत्र नाड्यः=मिली हैं इसी प्रकार नाभि चक्र में सम्पूर्ण नाड़ियां। स=वह परमात्मा। एष=इन के। अन्तश्चरते=इन सब के भीतर विद्यमान है। बहुधा जायमानः=बहुत तरह से प्रकाशित होता है अर्थात् योग, विराग ज्ञान और मुक्ति से प्रकाश होने वाला। ओमित्येवम्=ओ३म् इस शब्द के द्वारा से है। ध्यायथ=ध्यान करते हुए। आत्मानम्=जो सब जगत् में व्यापक है। स्वस्ति=जो कल्याण स्वरूप है अथवा जिस के ज्ञान से ही कल्याण अर्थात् सुख और शांति होती है। वा=तुम को। पाराय=दुखके समुद्र से पार करनेके लिये। तमसः=अज्ञान और अंधकार से। परस्तात्=जो पृथक् है जिसको कभी अविद्या और अज्ञान हो नहीं सकता।

अर्थ—जिस प्रकार रथके पहिये की नाभि में पुट्ठियां लगी हुई होती हैं, ऐसे शरीर के भीतर रोहे के आकाश में सम्पूर्ण नाड़ियां एक स्थान पर मिल रही हैं। इस स्थान पर योगी पुरुष परमात्मा को योग, वैराग्य और ज्ञान से मन को स्थिर करके उस परमात्मा के स्वरूप को अनुभव करते हैं। उस के ध्यान का विधान यही है कि उसको ओ३म् इस अक्षर के द्वारा जो परमात्मा का सब

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

से बड़ा नाम है, शब्द का उच्चारण और अर्थ के विचार करने से करे। वह ओ३म् तुम्हारे लिये कल्याणकारी दुःख और भय से छुड़ा कर, सुख और शांति और निर्भयता को देने वाला होगा। और उस के जप और विचार से ध्यान कर के तुम इस दुःखों के समुद्र से पार जा सकोगे। क्योंकि उस परमात्मा के भीतर किसी प्रकार की अविद्या और अंधकार नहीं। जो स्वयम् अविद्या और अज्ञान से बचा है, वही तुमको गिरने से बचा सकता है। जो प्रकृति अज्ञान स्वरूप है और जो जीव अल्पज्ञ होने से अविद्या के चक्कर में आने वाला है, उस के संग से तुम इस अविद्या से पार नहीं हो सकते। किन्तु उस ज्ञान स्वरूप परमात्मा की उपासना से ही अविद्या से पार होगे।

मन्त्र—यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्यैष महिमा भुवि। दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः। मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं सन्निधाय। तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं यद्विभाति ॥ ७। ३९ ॥

शब्दार्थ—यः=जो। सर्वज्ञ=सब के जानने वाला। सर्ववित्=सब को जानता है। यस्य=जिसकी। एष=यह। महिमा=महानता बड़ाई। भुवि=इस पृथिवी पर। दिव्ये=

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शुद्ध आकाश में। ब्रह्मपुरे=ब्रह्माण्ड जो रोहे जिस में समाधि अवस्था में जीव स्थित होता है। हि=निश्चय कर के। एष=यह। व्योम्नि=आकाश में। आत्मा=सर्व व्यापक प्रतिष्ठितः=स्थित है। मनोमयः=जिस प्रकार की मन की अवस्था हो वैसा ही दृष्टि आनेवाला। प्राण=प्राण जो इन्द्रियों को चलाते हैं। शरीर=शरीर। नेतः=इनको नियमसे चलानेवाला। प्रतिष्ठितः=स्थित रहता है। अन्ने=भोजन के कारण से। हृदयं=रोहे में जो आकाश है। सन्निधाय=उसके सहारे रह कर। तद्विज्ञानेन=उस के ठीक प्रकार जानने से। परिपश्यन्ति=सब ओर से देखते हैं या सब स्थान पर देखते हैं। धीरा=विद्वान् लोग। आनन्दस्य=आनन्द स्वरूप। अमृतम्=जो किसी समय में भी न मरे। यत्=जो। विभाति=जो प्रकाश करता।

अर्थ—जो परमात्मा सब के जाननेवाला है। जो एक ही काल सब को जानता। जिसकी यह महिमा पृथिवी पर प्रकाशित है। जिसकी महिमा में किसी प्रकार का दोष नहीं। जो रोहे कमल में अथवा ब्रह्माण्ड के छिद्र में दृष्टि आता है। जो आकाश में व्यापक हो कर स्थित है। जो जीवात्मा मन की अवस्था के अनुकूल अपनी दशा को अनुभव करता है। जो शरीर और प्राणों को प्रबन्ध में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चलानेवाला है। जो प्राण भोजन से स्थित रहते हैं। जो रोहे में स्थित हो कर उस परमात्मा के ठीक ठीक जानने वाले बुद्धिमान् मनुष्य, उस आनन्द स्वरूप अमृत रूप को जो सब पदार्थों को प्रकाश कराता है, उसको प्रत्येक ओर विद्यमान देखने में कोई ऐसी वस्तु नहीं जो उस से न बनी हो। कोई काम करने वाली शक्ति नहीं, जो उसकी सहायता के बिना काम कर सकती हो। जो कुछ संसार में काम हो रहा है, वह उस परमात्मा की महिमा को प्रकाश कराता है। और आकाश के भीतर सूर्य, चन्द्र और तारे काम कर रहे हैं, वह सब उस परमात्मा के नियम में चल रहे हैं। ब्रह्माण्ड के भीतर कोई वस्तु नहीं जो इस के नियम को तोड़ सके। इस की आज्ञा को उल्लंघन कर के कोई दंड से बच नहीं सकता। कोई बड़े से बड़ा महाराजा ऐसा नहीं कि जो उसके वारन्ट मृत्यु को एक मिनट के लिए रोक सके। चालीस चालीस लाख सेना रखते हुए तोपें और बन्दूकें, गढ़ और भवन उस के नियम से स्वतन्त्र नहीं रह सकते। कोई शक्ति नहीं जो उस के दंड से बचा सके।

मंत्र—भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशया।
क्षीयंते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ८।४०॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रश्न—यदि मुक्ति में सूक्ष्म शरीर की विद्यमानता स्वीकार की जावे, तो क्या दोष होगा ?

उत्तर—उस दशा में सूक्ष्म शरीर नित्य हो जावेगा और जो सूक्ष्म शरीर का उत्पन्न होना शास्त्रों में लिखा है, वह अशुद्ध हो जावेगा।

प्रश्न—यदि सूक्ष्म शरीर को अनादि और नित्य स्वीकार कर लें, तो क्या हानि होगी ?

उत्तर—प्रथम तीन के स्थान में चार अनादि हो जावेंगे। दूसरे सूक्ष्म शरीर का जो लक्षण किया है, वह अशुद्ध हो जावेगा।

मन्त्र—हिरण्यमये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्। तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्म विदोविदुः ९।४१

शब्दार्थ—हिरण्यमये=विज्ञानमय कोष है। परे=अगले कोष में। विरजं=सम्पूर्ण प्रकार के मल से पृथक्। ब्रह्म=परमात्मा विद्यमान है। निष्कलम्=जिस परमात्मा के प्राण, मन इत्यादि कोई कला नहीं। तत्=वह परमात्मा। शुभ्रम्=शुद्ध है। ज्योतिषां ज्योति=सम्पूर्ण सूर्यादि का भी प्रकाश करने वाला है, सूर्यादि सब ही प्रकाशक उसकी शक्ति से प्रकाश हैं। तत्=वह परमात्मा। यत्=जिसको। आत्मविदः=आत्मा को जानने वाले। विदुः=जानते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अर्थ—इस शरीर में पांच कोष अर्थात् एक अन्नमय कोष, दूसरा प्राणमय कोष, तीसरा मनोमय कोष, चौथा विज्ञानमय कोष, पंचम आनन्दमय कोष। निदान विज्ञान-मय कोष से परला जो आनन्दमय कोष है, उसमें ब्रह्म का दर्शन होता है; जिस पर किसी प्रकार का आवरण नहीं। संसार में जो ब्रह्म को देखते हैं, वह प्रकृति के आवरण से ढँपा हुआ है, परन्तु आनन्दमय कोष के भीतर इस आवरण से शून्य दृष्टि पड़ता है। वह परमात्मा शुद्ध है और परमात्मा प्रकाश करने वाले सूर्य चन्द्र और जीव इत्यादि का भी प्रकाश करने वाला है। उसको वही मनुष्य जानते हैं, जो जीव को जानते हैं; जिसको जीव के तत्त्व का ज्ञान नहीं, उसको परमात्मा का ज्ञान किस प्रकार हो सकता है। जो मनुष्य अपनी आंख को नहीं देख सकता, वह नेत्र के सुरमा को किस प्रकार देख सकता है। अतः वही मनुष्य परमात्मा को जान सकते हैं, जो प्रथम जीवात्मा को जान सकते हैं।

प्रश्न—क्या जीव और ब्रह्म एक है? जीव के जानने से ब्रह्म का ज्ञान होगा?

उत्तर—जीव ब्रह्म एक नहीं, किन्तु जिस प्रकार नेत्र और सुरमा दो वस्तु हैं, परन्तु उनमें इस प्रकार का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सम्बन्ध है कि जो नेत्र को देखता है, वह नेत्र के सुरमा को देखता है।

मंत्र—न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भांति कुतोऽयमाग्निः। तमेव भान्त मनुभाति सर्वतस्य भासा सर्वमिदं विभाति १०।४२॥

शब्दार्थ—न=नहीं। तत्र=आनन्दमय कोष के भीतर सूर्यः=सूर्य। भाति=प्रकाशकर्ता। न=नहीं। चन्द्रतारकं=यह भी उस स्थान में चंद्र, तारे प्रकाश करते हैं। न=नहीं। इमे विद्युतः=यह विद्युत जो नेत्र को चकाचौंध करती है। भांति=वहां प्रकाश करती। कुतः=कहां। अयम्=यह। अग्निः=अग्नि। तमेव=उसके। भांतम्=प्रकाश करने से। अनुभाति=पीछे प्रकाश करते हैं। सर्वं तस्य=सब उनसे। भासा=प्रकाश से। सर्वम्=सबके सब इदं=यह। विभाति=प्रकाश करते हैं।

अर्थ—उस आनन्दमय कोष में जहां ब्रह्म के दर्शन करते हैं, यह सूर्य प्रकाश नहीं करता। जिस प्रकार सूर्य के सम्मुख जुगनू प्रकाश नहीं कर सकता, ऐसे ही जहां उस परमात्मा की चमक नहीं हो सकती, यही चंद्र तारे, उस स्थान में प्रकाश करते हैं। और न नेत्रों को चकाचौंध करने वाली विद्युत उस स्थान में प्रकाश कर सकती

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है। और जहां चंद्र, सूर्य, तारे और विद्युत् प्रकाश न कर सकें तो वहां उस अग्नि के लैम्प और दीपक किस प्रकार प्रकाश कर सकते हैं। उस परमात्मा के प्रकाश से ही सारे प्रकाश हुए हैं, अतिरिक्त परमात्मा के प्रकाश देने के, बिजली में प्रकाश करने की शक्ति नहीं। जिस प्रकार चंद्र और तारे सूर्य के प्रकाश को प्रकाश करते हैं, ऐसे ही सूर्य भी परमात्मा के प्रकाश को लेकर प्रकाश करता है। यदि परमात्मा अपनी शक्ति से परमाणुओं को संयोग गुण देकर इस दशा में न लावें, तो कभी सूर्य, चन्द्र और तारे का कहीं नाम भी सुनाई न दे। अतः जो कुछ जगत में प्रकाश करने वाली वस्तु हैं, वह उस सर्व व्यापक ब्रह्म के प्रकाश को लेकर ही प्रकाश कर सकती हैं।

मन्त्र—ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण। अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ॥ ११ ।४३ ॥

शब्दार्थ—ब्रह्म=परमात्मा। एव=है। इदम्=प्रत्यक्ष तौर पर। अमृतम्=नाश रहित। पुरस्तात=सामने ब्रह्म है अर्थात पूर्व की ओर। ब्रह्म=परमात्मा। पश्चाद्=पीछे की ओर ब्रह्म=परमात्मा है। दक्षिणतः=दक्षिण की ओर। उत्तरेण=उत्तर। च=और। अधः=नीचे की ओर।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ऊर्ध्वम्=ऊपर की ओर। प्रसृतं=सब से अधिक फैला हुआ, सब से बड़ा। ब्रह्म=परमात्मा है। एव है। इदम्=प्रत्यक्ष। विश्वम्=जगत् में फैला हुआ। इदम्=प्रत्यक्ष। वरिष्ठम्=सब से उत्तम ब्रह्म ही है।

अर्थ—यह जगत् में अविनाशी रूप से विराज रहा है। यह ब्रह्म ही आगे की ओर जब देखें, तो उधर ब्रह्म है; पीछे की ओर देखें, तो वह ब्रह्म ही है; यदि दक्षिण की ओर देखें, तो वहां ब्रह्म, बाईं ओर देखें, वहां भी ब्रह्म है, ऊपर की ओर, नीचे की ओर; निदान दशों दिशाओं में फैला हुआ ब्रह्म है। जितनी चीज़ें हैं वह एक दूसरे की अपेक्षा बड़ी फैली हुई हैं, परन्तु ब्रह्म सब से बड़ा और सब से अधिक फैला हुआ है।

इति द्वितीय मुण्डक का द्वितीय खण्ड समाप्त हुआ।

अथ तृतीय मुण्डक-प्रथम खण्ड।

मन्त्र—द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति ॥ १। ४४ ॥

शब्दार्थ—द्वा=दो अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सुपर्णा=जिनका मालूम होना बहुत ही प्रशंसनीय है, जो देखने योग्य पक्षी अर्थात् चेतन्य है। सयुजा=जो कभी भी पृथक् नहीं होते, जिनका नित्य सम्बन्ध बना हुआ ही रहता है, जो परस्पर बहुत गुणों में अनुकूल होने से मित्र हैं। समानम्=एक हैं। वृक्षम्=जो वृक्ष की भांति नष्ट होने वाला जड़ शरीर है अथवा प्रकृति जिसके बहुत अवयव है। परिषस्वजाते=जो वृक्ष के प्रत्येक भाग में व्यापक है। तयो=उन दोनों में से। अन्यः=एक जीवात्मा। पिप्पलम्=उस वृक्ष के फल को। स्वादु=और यह समझ कर। अत्ति=खाता है। अनश्नन्न=दूसरा उसके फलों को यह खाता हुआ। अभिचाकशीति=वह उसको देखता है।

अर्थ—इस शरीर रूपी वृक्ष में अथवा प्रकृति में दो पक्षी चेतन्य अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा रहते हैं, जो सदा परस्पर मिले हुए हैं। कभी पृथक् हो ही नहीं सकते। क्योंकि जीव के भीतर ईश्वर व्यापक है, जो सर्व व्यापक होने से जीव से कभी पृथक् नहीं हो सकता। जहां जीव जाता है, वहीं ईश्वर उसके भीतर विद्यमान होता है। और चेतन्य होने से इन दोनों में मित्रता है अर्थात् जीव को परमात्मा से ही सुख मिलता है। क्योंकि समान गुण वाले के संग से ही उन्नति हुआ करती है। इनमें से

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जीवात्मा तो उस प्रकृति अथवा शरीर के शुभाशुभ कर्मों के फलों को उत्तम समझ कर भोगता है, परन्तु ईश्वर साथी होकर देखता है, वह कर्मों का फल भोगता है।

प्रश्न—प्रकृति को वृक्ष के साथ क्यों उपमा दी और जीव ब्रह्म को पक्षी के साथ ?

उत्तर—वृक्ष जड़ है, इसलिये जड़ प्रकृति के साथ उपमा दी। और पक्षी चेतन्य है, जिसको जीव और ब्रह्म के साथ उपमा दी। क्योंकि चेतन्य के लिये चेतन्य ही आवश्यक है।

मन्त्र—समाने वृक्षे पुरुषोनिमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः। जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्यमहिमानमिति वीतशोकः॥ २।४५॥

शब्दार्थ—समाने=एक ही जड़ अचेतन्य। वृक्ष=प्रकृति=अथवा शरीर में। पुरुषः=जीवात्मा। निमग्नः=अहङ्कार से सम्बन्ध उत्पन्न करके, राग द्वेष के चक्कर में बँधा हुआ। अनीशया=दुखों की जंजीर से छूटने के अयोग्य विचार करके। शोचति=यह विचार करता है कि मेरा धन नष्ट हो गया, मेरी संतान मर गई इत्यादि। मुह्यमानः=मोह के जाल में ग्रसित। जुष्टं=जब ज्ञान से अथवा योगियों के संग से। यदा=जब। पश्यति=देखता है। अन्यम्=अपने दूसरे को जो शोक से रहित है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ईशम्=जो अपने कामों के करने में बलवान् है। अस्य=उसकी। महिमानम्=उसके बनाये हुए जगत् में उसकी महिमा को। इति=यह। वीतशोकः=सम्पूर्ण दुखों से छूट जाता है।

अर्थ—एक ही वृक्ष में जिसमें जीव और ब्रह्म रहते हैं, जीवात्मा अहंकार की जंजीर से बंध कर अपने को शरीर मान कर यह विचार करता है कि मैं बलहीन हूँ। मेरी संतान मर गई, मैं उसको बचा नहीं सका। मेरा धन नष्ट हो गया उसकी रक्षा नहीं कर सका। मेरे मित्र छूट गये। निदान अविद्या के चक्कर में फँसा हुआ इस प्रकार की चिंता में लगा रहता है। और अहंकार के कारण उन नष्ट होने वाली वस्तुओं को आत्मा मान लेता है। आप कलकत्ता में हैं, मकान दिल्ली में। मकान जल जाने का समाचार आता है, रोने लगता है, हाय! मेरा नाश हो गया। यद्यपि आप कुशल पूर्वक विद्यमान हैं, रोग से शरीर कृशतन हो गया, रोने लगता है, शोक में दुबला हो गया। यद्यपि शरीर हुआ है, आत्मा को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुंचती, परंतु अविद्या से दुखी होता है। जब दूसरे साथी परमात्मा को ज्ञान से पूर्ण होने के कारण जो सब कुछ कर सकता है और दुखों के बंधन से पृथक्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है। जिस को न कोई अविद्या में ला सकता है, न दुख दे सकता है। तब उसकी उपासना से यह भी शोक से पृथक् हो जाता है। परमात्मा ही की उपासना जीव को दुःखों से बचाने वाली है।

प्रश्न—बहुत से मनुष्य तो जीव ब्रह्म को एक बताते हैं और वेद का सिद्धांत अद्वैत बताते हैं।

उत्तर—अद्वैत तीन प्रकार से होता है। एक स्वरूप के विचार से जब कोई दूसरी वस्तु न हो। परन्तु परमात्मा ऐसा नहीं, क्योंकि परमात्मा के गुण और नाम बताते हैं कि उसकी प्रजा भी जिस में वह व्यापक होने से आत्मा कहाता है। दूसरे एकता होती है, गुणों में अर्थात् उस के समान गुण किसी में नहीं। तीसरे एकता होती है उपासना के विचार से। अतः परमात्मा में दो प्रकार की एकता है अर्थात् वह एक ही उपास्य है, उसके समान गुण किसी दूसरे में नहीं।

प्रश्न—वह गुणों में एक है, इस के यह अर्थ कि जो गुण उसमें हैं, वह अन्य में नहीं है।

उत्तर—यह अर्थ ठीक नहीं, क्योंकि उस में सत्ता का गुण है, वह दूसरे पदार्थों में भी पाया जाता है।

मन्त्र—यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्त्तार-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् । तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ॥ ३ । ४६ ॥

शब्दार्थ—यदा = जिस समय ज्ञान से अथवा समाधि की दशा में योगी । पश्यः = शुद्ध अन्तःकरण वाला ज्ञानी मनुष्य । पश्यति = देखता है । रुक्मवर्ण = प्रकाश है वर्ण जिसका । कर्त्तारम् = जगत् उत्पादक । ईशम् = सम्पूर्ण जगत् के स्वामी सर्व शक्तिमान परमेश्वर को । पुरुषं = जो सब में व्यापक है । ब्रह्मयोनिम् = वेद के कर्ता सर्वज्ञ को । तदा = उस समय । विद्वान् = वह ज्ञानी पुरुष । पुण्यपापे = पुण्य और पाप अर्थात् शुभाशुभ कर्म के संस्कारों को । विधूय = साग अर्थात् उस फलसे साफ होकर । निरञ्जनः = राग द्वेष से पृथक् होकर । परमम् = अविद्या इत्यादि क्लेशों से रहित जो सब से सूक्ष्म है । साम्यम् = उसकी समानता को । उपैति = प्राप्त कर लेता है अर्थात् उन दुःखों से छूट जाता है ।

अर्थ—जिस समय मन के मैल को दूर कर के और मन को एकत्र करके, योगी पुरुष उस प्रकाश स्वरूप परमात्मा को जिसके प्रकाश से सम्पूर्ण जगत् प्रकाश हो रहा है और जो इस सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न करने वाला है और जो सबका स्वामी है, जिसकी शक्ति से सब ब्रह्माण्ड

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

का चक्र चल रहा है। चन्द्र, सूर्य और पृथिवी की चाल, तारों का चक्कर, ऋतुओं का परिवर्तन, उत्पन्न होने वाली चीजों का विकार। निदान प्रत्येक प्रकार के काम जिस की शक्ति से बन रहे हैं, जब उस को देख लेता है, तब वह पाप और पुण्य की अभिलाषा और अहंकार के मल को धोकर अर्थात् किसी प्रकार की इच्छा न रहने से और अन्तःकरण के पृथक् हो जाने से परब्रह्म जो परमात्मा है, जो सब से सूक्ष्म और सब से बलवान, उच्च और पूर्ण ज्ञाता दुखों के योग से रहित, जिस को कोई पकड़ नहीं सकता, उसको प्राप्त कर के उस के आनन्द गुण मिल जाने से, उसकी समानता को प्राप्त कर लेता है। जिस प्रकार वह सत्चित आनंद स्वरूप है ऐसे ही उस के आनन्द से जीव भी आनंद प्राप्त कर के सम्पूर्ण दुःखों से पृथक् हो जाता है।

मन्त्र—प्राणो ह्येष यः सर्वभूतैर्विभाति विजानन् विद्वान् भवते नातिवादी। आत्म क्रीड आत्मरतिः क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः॥ ४। ४७॥

शब्दार्थ—प्राणः=अपनी शक्ति से सम्पूर्ण जीवों के जीवन का कारण होने से परमात्मा का नाम प्राण है। हि=निश्चय करके। एष=यह परमात्मा है। यः=जो।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सर्वभूतै = सम्पूर्ण जीवों के रोहे में प्रकट होने वाला है। विभाति = सब के भीतर रह कर प्रत्येक जीव को अपने नियम से पाप पुण्य कर्मों का प्रकाश करनेवाला। विजानन् = उसको जानने से। विद्वान् = ज्ञानी पुरुष। भवेत = होता। न = नहीं। अतिवादी = अधिक वक्ता व्यर्थ अलापी। आत्मक्रीड़ी = अपनी आत्म में ही आनन्द को प्राप्त करता है। आत्मरतिः = आत्मा में ही उसको प्रेम होता है, दूसरे से नहीं। क्रियावान = अपने ज्ञान के अनुकूल कर्म करता है। तात्पर्य यह है कि ज्ञानी पुरुष कर्म करता है वाणी से नहीं कहता है। एष = यह। ब्रह्मविदां = वेद के ज्ञाताओं में अथवा परमात्मा के जाननेवालों में। वरिष्ठः = सब के उत्तम।

अर्थ—परमात्मा सम्पूर्ण जीवों के जीवन का कारण है, यदि परमात्मा अपनी शक्ति से संयोग न दे, तो कोई जीव जीवित नहीं रह सकता। जिस प्रकार यह परमात्मा सम्पूर्ण जीवों के भीतर प्रकाश कर रहा है और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जो नियमानुकूल चला रहा है, वह परमात्मा की सत्ता को प्रकाश कर रहा है, जिस प्रकार हमारी वाणी को नियम पूर्वक बोलना, हाथ, पांव का इच्छानुकूल चलना, हमारे भीतर नियम से चलानेवाले आत्मा का प्रकाश करता है। अथवा एंजन इच्छुक क्रिया अर्थात् उस का आगे बढ़ना,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पीछे हटना, खड़ा होना इत्यादि ड्रायवर की विद्यमानता के प्रमाण हैं। गो एंजन स्टीम से चलता है परन्तु नियमानुकूल इच्छुक क्रिया ड्रायवर का प्रमाण देती है। जो उस परमात्मा को जान लेता है,वह ज्ञानी पुरुष अधिक बोलने वाला नहीं होता। किन्तु अपने आत्मा के भीतर ही आनन्द भोगना, परमात्मा से ही प्रेम करना, कर्मकांडी, सत्यवादी होता है। ब्रह्म के जानने वालों में वही उत्तम है जो मन, वाणी और कर्म का सच्चा है। इस अगले मन्त्र में उस विधान और साधनों को बताते हैं जिससे उस ब्रह्म का ज्ञान होता है। जो मनुष्य ब्रह्म को साक्षात् करने के लिये दूर दूर देशों में घूमते हैं या जो पुरुष यह आशा रखते हैं कि गुरु अथवा पीर हमको निकाल कर परमात्मा दिखावेगा, वह बहुत ही भूल करते हैं। गुरु मार्ग बता सकता है; दिखा नहीं सकता।

मन्त्र—सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्। अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रोयं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ॥ ५।४८ ॥

शब्दार्थ—सत्येन=सदा सत्य बोलने, सत्य मानने, सत्य करने से। लभ्यः=मिलता है, जाना जाता है। तपसा= इन्द्रियों को विषयों से रोकने और शीतोष्ण, क्षुधा, तृषा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इत्यादि के सहन करने। हि=निश्चय करके। एष=यह आत्मा जीवात्मा परमात्मा। सम्यग्ज्ञानेन=ठीक प्रकार जो वस्तु जैसी है उस को वैसा ही जानना चाहिये। ब्रह्मचर्येण=सदा वेदानुकूल ८ प्रकार के मैथुनादि से पृथक् रहने से। नियम=सदा से यही नियम है। अन्तःशरीरे=इस शरीर में परमात्मा के दर्शन होते। ज्योतिर्मयः=वह प्रकाश स्वरूप उस में अज्ञान और तम का पता भी नहीं। हि=निश्चय करके। शुभ्रः=शुद्ध है। यत्र=जिस को। पश्यन्ति=देखते=हैं। यतयः=सन्यासी पुरुष। क्षीणदोषः=जिन के मल विक्षेप आवरण दोष नष्ट हो गये।

अर्थ—जो मनुष्य सत्य पर चलता है अर्थात् सत्य ही बोलता, सत्य ही मानता और सत्य ही करता है, वह आत्मा को जान सकता है; परन्तु वह मनुष्य सत्य पर नहीं चल सकता जो तप का अभ्यासी नहीं जिस से शीतोष्णता, क्षुधा, तृषा और इन्द्रियों को विषयोंसे रोकता है। जो कष्ट होता है उस के सहन करने का स्वभाव नहीं उत्पन्न कर लिया, यह हित का स्वभाव नहीं हो सकता। जब तक ठीक ठीक ज्ञान न हो, क्योंकि जो जानता है कि क्षुधा, तृषा प्राणों का धर्म है और मैं प्राण नहीं। वृद्ध होना और मरना शरीर का धर्म है, मेरा नहीं। हर्ष, शोक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मन का धर्म है, मेरा नहीं। उस में तो सहन की शक्ति हो सकती है, दूसरे में नहीं। परन्तु ज्ञान उनको हो सकता है जो नित्य ब्रह्मचर्य के नियमानुकूल गुरु से शिक्षा पाते हैं। जिन मनुष्यों ने ब्रह्मचर्य व्रत का पालन नहीं किया, उन को ठीक ज्ञान नहीं हो सकता। और जिन को ठीक ठीक ज्ञान न हो, वह तप नहीं कर सकते; वह सदा आलसी रहते हैं। परन्तु आलसी मनुष्य कभी सन्मार्ग पर नहीं चल सकते। क्योंकि सच्चे को बहुत सी परीक्षाओं में से निकलना पड़ता है। जैसे खरा सुवर्ण कभी अग्नि में जलाया जाता है, कभी परीक्षक (सर्राफ) को दिखाया जाता है और कसौटी पर घिसा जाता है, किसी को काट कर दिखाया जाता है। इसी प्रकार सत्य की परीक्षा होती है। जो परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाता है, वही सच्चा ठहरता है। निदान जीवात्मा अपने शरीर में तप कर के उस प्रकाश स्वरूप को जिस में किसी प्रकार का मल या तम लेशमात्र भी नहीं होता। और जो शुद्ध है, जिसको सब मनुष्य नहीं देख सकते, किन्तु वह सन्यासी मनुष्य जानते हैं। आगे तीन प्रकार की इच्छा को त्याग कर और कर्मकांड से अन्तःकरण के मल को उपासना काण्ड से अन्तःकरण की चंचलता को और अहङ्कार को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

त्याग देने से और आवरण दोष को दूर कर दिया हो। जब तक यह तीन प्रकार की इच्छाएं और तीन प्रकार के दोष विद्यमान हैं, कोई भी परमात्मा को नहीं देख सकता और न कोई दिखा सकता है। अतः ब्रह्मज्ञान के इच्छुकों को बाहर के प्रत्येक प्रकार के आडम्बर को त्याग कर भीतर देखने के लिये जो साधन बताये गये हैं, उन पर अमल करना चाहिये।

मन्त्र—सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः। येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम् ॥ ६। ४९ ॥

शब्दार्थ—सत्यमेव जयते=सत्य कर्म करके ही मनुष्य मुक्ति को प्राप्त कर सकता है। न=नहीं। अनृतम्=झूठ की जय नहीं होती। सत्येन=सत्य से। पन्था=मार्ग जिस पर मनुष्य चल रहे हैं। विततः=फैला हुआ है। देवयानः= वेदों के जानने वाले देवतों के कर्म का मार्ग। येन=जिस मार्ग से। आक्रमन्ति=परस्पर में उत्साह से चलते हैं। ऋषयः=वेदों के अर्थ के ठीक ठीक जानने वाले ज्ञानी। हि=निश्चय करके। आप्तकामः=जिन्हों ने अपने उद्देश में सफलता प्राप्त करली है, जिस दशा में। यत्र=जहां पर। तत्=वह। सत्यस्य = सत्य कर्म करने का। परमम्=अत्यन्त सुन्दर। विधानम्=अन्तिम सीमा है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अर्थ—अन्तिम सत्य की जय होती है, यद्यपि परीक्षा के समय सत्यता निर्बल मालूम होती है। झूठ को कभी सफलता प्राप्त नहीं होती। मुलम्मा कहने से कोई परीक्षा नहीं करता; सोना कहने से उसकी परीक्षा की आवश्यकता होती है। इस के यह अर्थ नहीं कि मनुष्य सोने से मुलम्मा को अच्छा समझते हैं, इस कारण उसकी परीक्षा नहीं करते। सत्य से ही देवतों के सन्मार्ग का द्वार खुला हुआ है अर्थात सत्य से मुक्ति को प्राप्त कर सकते हैं। जिस मार्ग से ऋषि मुक्ति प्राप्त कर चुके हैं, वह वेद के ज्ञानियों का ही मार्ग सत्यता की अन्तिम सीमा है।

प्रश्न—क्या सत्य की सदैव जय होती है? हम तो प्रायः देखते हैं कि सत्य की पराजय होती है।

उत्तर—अन्त में अवश्य सत्य की जय होगी। मध्य में जो असत्य की जय होती है, वह सत्य की परीक्षा होती है। क्योंकि यदि सत्य पर पूर्ण विश्वास होता है, तो असफलता की दशा में भी सत्य से पृथक् नहीं होता। यदि पूर्ण विश्वास नहीं, तो वास्तव में वह सत्य नहीं।

मन्त्र—बृहच्च तद्दिव्यमचिन्त्यरूपं सूक्ष्माच्च तत् सूक्ष्मतरं विभाति। दूरात्सुदूरे तदिहान्तिके च पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायाम् ॥ ७। ५० ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शब्दार्थ—बृहत्=बहुत ही बड़ा। च=और। तत्=वह। दिव्यम्=वह स्वयम् प्रकाश स्वरूप है, उस के देखने को किसी अन्य के प्रकाश की आवश्यकता नहीं। अचिन्त्यरूप=जिस के रूप को मन से भी विचार नहीं सकते, मन सब की सीमा पर हो आता है, परंतु वह इस शक्ति से बाहर है। सूक्ष्मात्=अति सूक्ष्म है। विभाति=प्रकाश करता है। दूरात्=दूर से भी। सुदूरे=अधिक दूर है। तत्=वह। इह=यहां। अंतिके=निकट ही है। च=और। पश्यत्सु=देखने वालों के भीतर है। इह=यहां। एव=भी। निहतम्=स्थिर है, विद्यमान है। गुहायाम्=बुद्धिके भीतर।

अर्थ— वह परमात्मा सबसे बड़ा और प्रकाश स्वरूप है, जिसके जानने के लिये किसी अन्य के प्रकाश की आवश्यकता नहीं। उसके रूप को मन से भी विचार नहीं सकते, क्योंकि उसके गुण अनन्त हैं। क्योंकि सूक्ष्म प्रकृति और जीव से भी अधिक सूक्ष्म है। इसलिये उनके भीतर व्यापक हो रहा है और उनको प्रकाश देता है, जिसके प्रकाश से यह प्रकृति और जीव काम कर रहे हैं। वह अज्ञान की दूरी से दूर है। और न मक्का जाकर ही उसको पा सकते हैं और न काशी जाकर और न द्वारका में, न रामेश्वर में। और ज्ञानियों के लिये इस शरीर के भीतर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ही विद्यमान है। वह मनुष्य अन्तःकरण को शुद्ध करके विज्ञान से मन की वृत्तियों को स्थिर करके अहङ्कार के आवरण से पृथक् होकर उसको देखना चाहते हैं, उनको यहां ही अपनी बुद्धि के भीतर मालूम पड़ता है। तात्पर्य यह है कि परमात्मा को देखने के लिये कहीं दूर जानेकी आवश्यकता नहीं, किंतु अन्तःकरण में देखने की आवश्यकता है। जो मनुष्य परमात्मा को बाहर ढूंढ़ते हैं, उन से परमात्मा बहुत ही दूर है। और जो हृदय में देखते हैं उनके नितान्त समीप हैं। बाह्य ज्ञान से देखने वालों को वह किसी दशा में मिल नहीं सकते और ज्ञान चक्षु से देखने वाले उनको सदा देखते हैं।

मन्त्र—न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा। ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तुतं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः ॥ ८। ५१ ॥

शब्दार्थ—न=नहीं। चक्षुषा=नेत्रों से उसे कोई देख सकता है, क्योंकि वह अनन्त है, सत है, सूक्ष्म है। न=नहीं। अन्यै देवैः=दूसरे इंद्रियों के द्वारा से। अपि=भी वाचा=वाणी से उस के गुणों की सीमा पा सकता है। तपसा=तप से। कर्मणा वा=न कर्म से, तप और कर्म से भी नहीं देखा जाता। ज्ञान प्रासदेन=ज्ञान के भीतर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जो राग द्वेष इत्यादि दोष प्रस्तुत हैं, जब यह दोष दूर हो जावें। विशुद्ध सत्त्व=साफ दर्पण की भांति मन शुद्ध हो जावे। उन में किसी प्रकार की राग अथवा द्वेष सत्कार मौजूद हो। तत्=उससे। तु=है। तम्=उस परमात्मा को पश्यते=देख सकते हैं। निष्कलम्=निराकार और अनन्त को। ध्यायमानः=ध्यान करते हैं।

अर्थ—परमात्मा निराकार है, इसलिये उसको नेत्र देख नहीं सकते और वह अत्यन्त समीप है, इसलिये नेत्र भी देखने में असमर्थ हैं। और महान से भी महान है, इसलिये भी नेत्र नहीं देख सकते और न वाणी उस के गुणों के सीमा को बता सकती है। और न कोई दूसरी इंद्रियां उसको अनुभव कर सकती हैं। और न उसको तप अर्थात शीतोष्णादि कष्ट सहन करने से जान सकते हैं और न कर्म से उसका ज्ञान हो सकता है। किंतु अज्ञान के दोषों से रहित होकर जब बुद्धि शुद्ध हो जाती है अर्थात मन में जो मल विक्षेप आवरणादि दोष हैं, यह नितान्त दूर होजाते हैं, तब उस शुद्ध मन से ध्यान करता हुआ उसको देख सकता है।

प्रश्न—इन्द्रियां बाहर की चीज़ों के देखने के लिये हैं, उनसे भीतर नहीं देखा जा सकता। इस लिये जो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भीतर देखता है, वह किसी भौतिक इन्द्रिय अथवा मन से नहीं देखा जाता है। जीवात्मा की स्वाभाविक शक्ति जो बुद्धि है, उससे देखा जाता है।

उत्तर—निराकार के अर्थ असंयोग के हैं। क्योंकि आकार कहते हैं नियत वस्तुओं के योग को, जिसका दूसरा नाम स्थूल है। और जिसमें योग न हो, वह निराकार अर्थात सूक्ष्म है। अतः सूक्ष्म और स्थूल वस्तु अपने गुणों से ग्रहण की जाती हैं। जिसके देखने के लिये जो साधन नियत हैं, उनसे वह देखा जाता है, दूसरे से नहीं देख सकते।

मंत्र—एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मिन् प्राणः पंचधा संविवेश। प्राणैश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानाम्। यस्मिन् विशुद्धे विभवत्येष आत्मा॥९।५२

शब्दार्थ—एष=यह। अणु=सूक्ष्म। आत्मा=सब में व्यापक। चेतसा=पवित्र ज्ञान से जो हर प्रकार के दोष से पृथक् हो। वेदितव्यः=जानने के योग्य है और प्रकार से नहीं। यस्मिन्=जिसके भीतर। प्राणः=प्राण वायु। पञ्चधा=पांच प्रकार के प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान नाम वाले। संविवेश=ठीक प्रकार प्रविष्ट हो रहे हैं। प्राणैः=प्राण और उसके आश्रय काम करने वाली

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इन्द्रियों के साथ। चित्तं=अन्तःकरण। सर्वं=सब प्रकार के अर्थात् मन और बुद्धि। ओतम्=मन के मनकों में तागे की भांति पिरोया हुआ है। प्रजानाम्=प्रजा का। यस्मिन्=जिस शरीर के भीतर। विशुद्धे=शुद्ध होने से। अर्थात् तीन प्रकार की इच्छा और राग द्वेष के पृथक् होने से। विभवति=अपने स्वरूप को प्रकट करता है। एष=योगियों को प्रत्यक्ष होने वाला। आत्मा=परमात्मा।

अर्थ—उस सूक्ष्म आत्मा को ज्ञान चक्षु से देख सकते हैं। जिस शरीर में पांच प्रकार के प्राण ठीक प्रकार प्रविष्ट हो रहे हों, प्राणों से सम्पूर्ण इन्द्रियां और चारों प्रकार के भीतरी यंत्र अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार इस प्रकार पिरोये हुए हैं, जैसे माला के मनकों में धागा पिरोया होता है। जिस शरीर में चित्त अथवा अन्तः-करण सम्पूर्ण दोषों से शुद्ध हो जाते हैं, अर्थात् मन में मल अर्थात दूसरों की क्षति चाहना। चंचलता हर समय इच्छा का बढ़ते रहना। आवरण, अहंकार से अपनी शक्ति और दशा को अनुभव न करना, किन्तु बड़ा मान लेना और अज्ञान से पदार्थों के स्वरूप को यथार्थ न जानना; किन्तु और का और जानना। यह सब दोष दूर हो जाते हैं, तब वह परमात्मा चित्त में अपना प्रकाश करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

और जिस प्रकार किसी बड़े अफसर को आना होता है, तो सम्पूर्ण शहर की सफाई कराते हैं, सम्पूर्ण हाट बाजारों म रोशनी करते हैं, क्योंकि एक बड़े अफसर को आना है। इसी प्रकार जो अन्तःकरण तम अवस्था में अपवित्र है, वहां परमात्मा के दर्शन नहीं होते, किन्तु जो शुद्ध और प्रकाशित है, उस चित्त में परमात्मा के दर्शन होते हैं।

मंत्र—यं यं लोकं मनसा सविभाति विशुद्ध-सत्वः कामयतेयांश्च कामान्। तं तं लोकं जायते तांश्च कामांस्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्च्चयेद् भतिकामः॥ १०। ५३॥

शब्दार्थ—यम्यम्=जिस जिसको। लोकं—शरीर को। मनसा=मन से। विभाति=मनसे इच्छा करता है। विशुद्धसत्वः=जिसका मन रागद्वेष, छल कपट, आडम्बर से रहित है। कामयते=इच्छा करता है। याश्च=जिसको। च=और। कामान्=इच्छाओं को। ताम्=उस उस। लोकम्=सूर्य, चन्द्रादि अथवा शरीर में। जायते=उत्पन्न होता है। तान्=उन। कामान्=इच्छाओं को प्राप्त कर लेता है। तस्मात्=इस कारण से। आत्मज्ञम्=आत्मा के जानने वाले विद्वान को। अर्चयेद्=उसकी सेवा करने अर्थात् उसका संग करके उसके गुणों को प्राप्त करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मूतिकामः=जिसको योग सिद्ध करने की इच्छा हो, क्योंकि उसके संग से वह वैसा बन सकता है।

अर्थ—जिस ज्ञानी पुरुष ने अपना मन शुद्ध कर लिया है, वह जिस जिस लोक में जाने की इच्छा करता है, अथवा जिस वस्तु की इच्छा रखता हो, उसको वह प्राप्त कर सकता है। इस कारण जिस मनुष्य को योग की इच्छा हो कि मैं योग सिद्ध करूँ, उसको चाहिये कि आत्मा के जानने वाले योगियों की सेवा करे।

प्रश्न—अन्तःकरण की शुद्धि होने की, मनुष्यों और दूसरी वस्तुओं की कामना कैसे हो सकती है ? क्योंकि अन्तःकरण के शुद्ध होने का प्रमाण यही है कि तीन प्रकार की वस्तु अर्थात वित्तेषणा, लोकेषणा, पुत्रेषणा की इच्छा न रहे। जिसको इनकी इच्छा है, उसका मन शुद्ध नहीं। और जिसका मन शुद्ध है, उसको इच्छा नहीं ?

उत्तर—इच्छा दो भाँति से होती है, एक अपने स्वार्थ से, दूसरे परोपकार के लिये। जिसका मन अपवित्र होता है, उसको अपने लिये इच्छा होती है। और जिसका मन शुद्ध है, उसको दूसरों के उपकार की इच्छा होती है।

प्रश्न—परोपकार का फल अन्तःकरण की शुद्धि है। जब अन्तःकरण शुद्ध हो गया, तो परोपकार का क्या प्रयोजन ?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उत्तर—जीवात्मा का स्वभाव कर्म करना है, जिससे वह अतिरिक्त उस दशा के जब कि कर्म करने के यन्त्र मन आदि न हों, कर्म से मन की विद्यमानता में खाली नहीं रह सकता। अतः वह शुभ कर्म करे अथवा अशुभ, इस लिये मन के शुद्ध होने पर भी बुद्धिमान् परोपकार करते हैं, जिससे पाप की ओर मन न चला जावे।

प्रश्न—शुद्ध मन वाला ज्ञानी भी पाप कर सकता है?

उत्तर—मन से काम करता है, यदि ज्ञानी उसको सन्मार्ग पर जाने देगा तो वह पाप नहीं कर सकता। यदि उसके स्वभाव के विरुद्ध उसको रोकेगा, तो वह जिस प्रकार अवसर मिलेगा कर्म करेगा। इस लिये मन की शुद्धि के पश्चात् योग के साधनों से उसकी चंचलता को रोकने की आवश्यकता विद्वानों ने स्वीकार की है।

तृतीय मुंडक का प्रथम खंड समाप्त हुआ।

———

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अथ तृतीय मुण्डक-द्वितीय खण्ड।

मन्त्र—स वेदैतत्परमं ब्रह्मधाम यत्र विश्वं निहितं भाति शुभ्रम्। उपासते पुरुषं येह्यकामास्ते शुक्रमेतदतिवर्त्तन्ति धीराः॥ १।५४॥

शब्दार्थ—सः = वह ज्ञानी पुरुष जिसका विचार ऊपर हो चुका है। वेद = जानता है। एतत् = यह प्रत्यक्ष परमम् = सबसे उत्तम सब से सूक्ष्म। ब्रह्म = परमात्मा है। यत्रधाम = जिस में। विश्व = यह सम्पूर्ण जो विद्यमान है। निहितं = स्थित होकर भाति = प्रकाश हो रहा है। शुभ्रम् = जो शुद्ध है, जिस में किसी प्रकार का दोष नहीं। उपासते = उपासना करते हैं। पुरुषं = उस पुरुष की। यः = जो ज्ञानी मनुष्य। हि = निश्चय करके। अकामा = निष्प्रयोजन। ते = वह ज्ञानी मनुष्य। शुक्रम् = वीर्य्य को। एतत् = यह ज्ञानी पुरुष। अतिवर्त्तन्ति = उसकी शक्ति से बाहर निकल जाते हैं अर्थात वह विषय भोग नहीं करते। धीराः = ऐसे बुद्धिमान् योगी।

अर्थ—उक्त गुणों से युक्त ज्ञानी जान सकता है कि सब से सूक्ष्म परमात्मा किस स्थान पर दर्शन देते हैं। जिस परमात्मा में यह सम्पूर्ण जगत् स्थित होकर प्रकाश करता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है, अतिरिक्त परमात्मा के जगत् की सत्ता का दृष्टि पड़ना कठिन है। क्योंकि जगत् में दो गुण, संयोग और वियोग काम कर रहे हैं। जो परस्पर विरोधी हैं, एक से उत्पत्ति होती है दूसरे से नाश। यह दोनों एक ही प्रकृति का गुण तो भूल नहीं सकते, अतः एक ही माना जाता है। प्रकृति में स्वाभाविक गुण संयोग मान कर भी दुनियां का काम चल नहीं सकता। और न वियोग मान कर चल सकता है। अतः शुद्ध स्वरूप परमात्मा ही संसार में प्रकाश करते हैं। जो उस परमात्मा की निष्काम उपासना करता है, वह संसार के विषयों में नहीं फँसता, वह वीर्य्य को नहीं गिराता। किंतु अपनी सम्पूर्ण शक्ति परमात्मा की उपासना और ज्ञान में व्यय करता है।

मन्त्र—कामान् यः कामयते मन्यमानः स कामभिर्जायते तत्र तत्र। पर्याप्त कामस्य कृतात्मनस्तु इहैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः ॥ २। ५५ ॥

शब्दार्थ—कामान = कामनाओं को। यः = जो मनुष्य कामयते = चाहता है। मन्यमानः = मन में उनकी वासना रखता हुआ। सः = वह मनुष्य। कामभि = कामनाओं के कारण। जायते = उत्पन्न होता है। तत्र तत्र = उस स्थान में जहां की इच्छा थी। पर्याप्त कामस्य = जिसने कामनाओं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

को पूर्ण कर लिया है, अब उसे कोई इच्छा शेष नहीं। कृतात्मनः = जिसकी आत्मा काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि से पृथक् होगई है। तु = तो। इह = इस संसार में। एव = है। प्रविलीयन्ते = अपने अपने जिस में प्रवेश हो जाती हैं। कामा = उसकी इच्छा।

अर्थ—जो मनुष्य संसार की कामनाओं में फँसा हुआ और निशदिन कामना ही करता रहता है, वह अपनी अभिलाषा के अनुकूल बार बार जन्म लेता है। यदि घोड़े की इच्छा है, तो घोड़े के जन्म में जाता है। यदि स्त्री की इच्छा है, तो स्त्री का जन्म लेता है। यदि सूर्य-लोक में जाने की कामना है, और वैसे कर्म किये हैं, तो सूर्य लोक में जाकर जन्म लेता है। प्रयोजन यह है, इच्छा से काम करने का परिणाम जन्म है, मुक्ति नहीं। जिसने आत्मा की कामनाओं से अलग करके काम, क्रोध लोभ, मोह को आत्मा से दूर रहने दिया है और सब कामनाओं को पूर्ण करके उनका फल समझ लिया है। और अब उसके मन में कोई इच्छा भी उत्पन्न नहीं होती। उसकी सब इच्छाएँ अपने अपने कारण अर्थात् सब में प्रवेश हो जाती हैं, उसके साथ जाकर जन्म होता है।

प्रश्न—जिस प्रकार की कामना की जावे, वैसा ही जन्म होता है?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उत्तर—जिस प्रकार की इच्छा से यज्ञादि शुभ कर्म किये जावेंगे, वैसा ही जन्म होना सम्भव है।

मन्त्र—नाऽयमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनू ँ स्वाम् ॥३।५६॥

शब्दार्थ—न=नहीं। अयमात्मा=यह जीवात्मा यह परमात्मा। प्रवचनेन लभ्यो=बहुत से व्याख्यान करने से मिल सकता है। न=नहीं। मेधया=बुद्धि से जाना जाता है। बहुधा श्रुतेन=बहुत सी पुस्तकों के पढ़ने से अथवा बहुत से कथा वार्त्ता और व्याख्यानों के सुनने से जाना जाता है। यम्=जिस पुरुष। एष=यह जगत् में परमात्मा व्यापक। वृणुते=अधिकारी समझकर स्वीकार करता हूं। तेन=उस पुरुष को। लभ्यः=ज्ञान होता है। तस्य=उसके लिये। एष=यह जगत् कर्त्ता परमात्मा। वृणुते=फैला देता है, प्रकाश करता है। तनू=फैलाव को। स्वाम्=अपने।

अर्थ—उस परमात्मा को बहुत पढ़ाने अथवा उपदेश करने अथवा व्याख्यान देने से नहीं जान सकते, और न बुद्धि से परमात्मा का ज्ञान होता है और न बहुत से शास्त्रों के सुनने सुनाने और पुस्तकों के पढ़ने पढ़ाने से परमात्मा को जान सकते हैं। जिसको अधिकारी देखकर यह आत्मा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्वीकार करता है अर्थात जिसने ज्ञान, कर्म और उपासना से सम्पूर्ण दोषों को दूर कर लिया है, जिसको अतिरिक्त आत्मा के जानने के और कोई इच्छा नहीं, जिसका अतिरिक्त आत्मा के और भरोसा नहीं। निदान जिसका सर्वस्व आत्मा ही है, जिसका दूसरी ओर ध्यान ही नहीं। जिसकी बुद्धि पतिव्रता स्त्री की भांति परमात्मा के ही ध्यान में लगी हुई है, जिसको और ओर विचार करना भी दुःख का कारण मालूम होता है, वह परमात्मा के जानने का अधिकारी है, उसको परमात्मा के दर्शन हो सकते हैं। सब साधन अधिकारी बनने के लिये हैं। जब अधिकारी बन जाता है, तब परमात्मा उस पर अपने स्वरूप का प्रकाश कर देते हैं।

प्रश्न—एक ओर तो कहा जाता है, कि परमात्मा बुद्धि से नहीं जाना जाता। दूसरी ओर कहा जाता है, परमात्मा केवल बुद्धि से जाना जाता है?

उत्तर—बुद्धि दो भांति की होती है। एक जीवात्मा का स्वाभाविक ज्ञान। दूसरे एक मन की प्रेरणा से परमात्मा का ज्ञान नहीं हो सकता। स्वाभाविक बुद्धि से समाधि और मुक्ति की दशा में ज्ञान होता है।

मन्त्र—नाऽयमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रमादात्तपसो वाप्यलिङ्गात् । एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वांस्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम ॥४।५७॥

शब्दार्थ—न=नहीं । अयमात्मा=यह परमात्मा । बलहीनेन=जिसने ब्रह्मचर्य का सेवन करके आत्मिक बल नहीं पढ़ाया । लभ्य=वह उसको जान सकता है । न=नहीं । च=और । प्रमादात्=जिसने अभिमान में फंस कर आत्म चेतन्य की ओर से लापरवाही की है । तपसः=तप से भी उसको नहीं जान सकते । वापि अलिङ्गात्=पाखंड से सम्पूर्ण वैदिक धर्म के लक्षणों को त्याग देने से ही परमात्मा नहीं जाना जाता । एतैः=उस ब्रह्मचर्याश्रम को करने और आलस को त्यागने, सत्य, तप करने आदि। उपायैः=जो उपायों से । यतते=परिश्रम करता है । यस्तु=जो कोई । विद्वान्=ज्ञानी मनुष्य । तस्य=उसको । एषः=योग से जानने योग्य । आत्मा=परमात्मा । विशते=प्रवेश करता है या दिखाता है । ब्रह्म=सब से बड़े । धाम=सब के रहने के स्थान परमेश्वर को ।

अर्थ—जिस मनुष्य ने ब्रह्मचर्याश्रम धारण करके और कर्म और उपासना से आत्मिक बल प्राप्त नहीं किया, उस शक्ति से शून्य मनुष्य को परमात्मा के दर्शन नहीं हो सकते । और जो अभिमान और नित्य कर्मों से अचिन्त

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हैं, उनको भी परमात्मा के दर्शन नहीं हो सकते। और न आडम्बर तप से कोई परमात्मा को जान सकता है। और न वैदिक धर्म के लक्षणों को त्याग कर स्वतन्त्रता से उसको मान सकता है। यदि नियम पूर्वक ब्रह्मचारी बनकर, अज्ञान को नाश करके और गृहस्थाश्रम में परोपकार से मन को शुद्ध करके, इन उपायों से जो वेदों ने बताये हैं, जो विद्वान् पुरुषार्थ करता है, उसको परमात्मा अपने स्वरूप का दर्शन कराते हैं, अथवा वह ब्रह्मधाम में प्रविष्ट होता है। प्रयोजन यह है कि परमात्मा के जानने के लिये बहुत बड़ी शक्ति अर्थात् प्रकृति के विषयों की तुलना करनी पड़ती है। प्रत्येक ओर से विषय आत्मा को अपनी ओर खींचते हैं, मन विषयों की ओर आत्मा को ले जाना चाहता है। यदि आत्मा में बल नहीं है, तो मन के पीछे लग जाता है। यदि ब्रह्म की उपासना के करने से आत्मा बलवान है, तो विषयों से हटकर परमात्मा की ओर लग जाता है।

मंत्र—संप्राप्यैनमृषयो ज्ञानतृप्ताः कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः। ते सर्वज्ञ सर्वतः प्राप्य धीरा युक्तात्मानः सर्वमेवाविशान्ति ॥ ५। ५८॥

शब्दार्थ—सम्प्राप्य=ठीक प्रकार प्राप्त करके। ऋषयः= वेद जानने वाले ज्ञानी अथवा वैदिक कर्म के आचार्य।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ज्ञानतृप्ता=बाहर के विषयों को त्याग करके, भीतर के ज्ञान से ही जो तृप्त। कृतात्मा=जिनकी आत्मा शुद्ध हो गई है अर्थात् ऊपर की उपाधि से पृथक् हो गये हैं। वीतरागाः= जिसका राग दूर हो गया है। ते=वह विद्वान् मनुष्य। सर्वज्ञ=सब के जानने वाला, जगव्यापक परमेश्वर। सर्वतः=सब ओर से। प्राप्य=प्राप्त करके। धीरा=आत्म दर्शन के विचारने वाले। युक्तात मनः=जिनकी बुद्धि, मन परमात्मा से युक्त है। सर्वमेव=सर्व कारण का कार्यरूप जगत को। अविशान्ति=स्वतन्त्रता से घूमते अथवा प्राप्त होते हैं।

अर्थ—उस परमात्मा को प्राप्त होकर वेद के जानने वाले ज्ञानी मनुष्य जो ज्ञान से तृप्त हैं, जिनको किसी वस्तु की इच्छा शेष नहीं रही, जिनका आत्मा बाहर की सम्पूर्ण उपाधियों से शुद्ध हो गया है, जिनका राग द्वेष सब नष्ट हो चुका है, जिनके विषयों की चिंता जड़ मूल से जाती रही है। वह मनुष्य इस सर्वव्यापक, सब के ज्ञाता, सब स्थान पर प्राप्त होकर आत्म विचार में लगे हुए और बुद्धि को परमात्मा की ओर मिलाए हुए सब कारण का कार्य रूप जगत् में स्वतन्त्रता से घूमते हैं। उनको कोई बन्धन नहीं होता और कहीं आने जाने में बाधा नहीं होती। इसलिये वह स्वतन्त्रता से आनन्द भोगते हुए शांति से विचरते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मंत्र—वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यास योगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः । ते ब्रह्मलोकेषु परान्त-काले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ॥ ६ । ५९ ॥

शब्दार्थ—वेदान्त विज्ञान सुनिश्चितार्थाः=वेदान्त के पुस्तकों से उत्पन्न होने वाला जो ज्ञान है अर्थात् उप-निषद् और वेदान्त दर्शन से जो ज्ञान उत्पन्न होता है, उससे जिस ने अर्थों को निश्चय कर लिया है। संन्यास योगतं=या तो वैराग्य द्वारा अर्थात् प्रत्येक संसारिक वस्तु में दोष मालूम करने से अथवा योगाभ्यास से मन को रोकने से। यतयः=जिन्होंने इन्द्रियों को वश में कर लिया है, इससे। शुद्धसत्त्वाः=बुद्धि को सब प्रकार के दोषों से शुद्ध कर लिया है। ते=वह ज्ञानी पुरुष। ब्रह्मलोकेषु= ब्रह्मलोक अर्थात् ब्रह्म दर्शन में। परान्तकाले=महाकल्प की सीमा तक अथवा पराविद्या से उत्पन्न हुए शुद्ध सुख के अन्तकाल तक। परामृताः=पराविद्या से मुक्त हुआ जीव। परिमुच्यन्ति=उस अवस्था से छूट जाते हैं।

अर्थ—जो मनुष्य वेदान्त के ग्रन्थों अर्थात् उपनि-षदों और वेदान्तसूत्र इत्यादि के मन्त्रों और मन से जीवात्मा और परमात्मा और प्रकृति के स्वरूप को निश्चय कर चुके हैं, वह जीवनमुक्त संन्यास अर्थात् वैराग्य द्वारा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सब वस्तुओं में दोष देखने अथवा योग द्वारा मन ठीक करने से अथवा प्रकृति के त्याग और परमात्मा के योग से मन शुद्ध करके, इन्द्रियों को वश में करने वाले महात्मा ब्रह्मलोक में प्राप्त होकर अर्थात् दर्शन करके पराविद्या के उत्पन्न हुए ज्ञान के अन्त तक पराविद्या से प्राप्त मुक्ति को भोगते हैं और महाकल्प के पश्चात् फिर सब उस दशा से छूट जाते हैं।

प्रश्न—परान्तकाल का अर्थ ब्रह्मायु अथवा महाकल्प, अथवा पराविद्या से परान्तज्ञान का अन्तकाल किस प्रकार हो सकता है?

उत्तर—जब कि ब्रह्मलोक कार्य है जिस को शंकराचार्य इत्यादि विद्वानों ने स्वीकार किया है, तो कार्य की आयु भी होती है। क्योंकि ब्रह्म जो नित्य है उसकी आयु तो नहीं हो सकती, क्योंकि आयु अनित्य की होती है। नित्य पदार्थों में काल का व्यवहार नहीं हो सकता। इस लिये जिस जगह ब्रह्म की आयु लिखी है, इस का प्रयोजन ब्रह्मलोक आयु अथवा ब्रह्मदर्शन की आयु से है। और ब्रह्म-दर्शन पराविद्या से होता है, पराविद्या से प्राप्त ब्रह्म-दर्शन का अन्त परान्त कहलाता है।

मंत्र—गताः कलाः पंचदश प्रतिष्ठां देवाश्च

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सर्वे प्रति देवतासु । कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्वएकी भवन्ति ॥ ७ । ६० ॥

शब्दार्थ—गताः=प्राप्त कर के । कलाः=शरीर से सम्बन्ध रखने वाली प्राणेन्द्रियां । पञ्चदश=पांच प्राण दश इंद्रियां । प्रतिष्ठा=अपने कारण । देवाश्च=विषयों को प्रकाश करने वाली काल आदि इंद्रियां । सर्वे=सब । प्रतिदेवतासु=आकाश आदि अपने-अपने कारणों में । कर्माणि=कर्मों से उत्पन्न हुए संस्कार । विज्ञानमयः=ज्ञान स्वरूप जिस को स्वाभाविक व नैमित्तिक दोनों ज्ञान हों । च=और । आत्मा=जीवात्मा । परे=सब से उच्च । अव्यय=नाश से रहित । सर्वे=सब । एकीभवन्ति=एकत्र होते हैं ।

अर्थ—मुक्त होने के पश्चात् जीवात्मा के साथ जो पंचादश कला अर्थात् पांच प्राण और दश इन्द्रियां हैं, वह सब अपने अपने कारणों में अर्थात् पांच भूतों के भीतर प्रवेश हो जाती हैं । और सूक्ष्म शरीर के कारण में प्रविष्ट हो जाने से सम्पूर्ण कर्म भी नष्ट हो जाते हैं । कर्मों का सम्बंध तब ही तक है जब तक जीव को शरीर और अंतःकरण में अहंकार है अर्थात् उनको अपना मानता है । और जब यह अहंकार नष्ट हुआ, तो सारा सूक्ष्म शरीर अपने कारण में प्रविष्ट हो गया । और कर्मों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

का संस्कार भी सूक्ष्म शरीर के साथ ही गया । कर्मों के नाश होने पर जीवात्मा परमात्मा के साथ रहता है और उससे सुख भोग करता है ।

प्रश्न—क्या मुक्ति के काल में जीव ब्रह्म का भेद दूर हो जाता है ।

उत्तर—जीव ब्रह्म में जो दूरी थी वह दूर हो जाती है, क्योंकि न तो देश की दूरी थी न काल की, केवल ज्ञान की दूरी थी, वह दूर हो जाती है और ब्रह्म के गुण भी जीव में आ जाते हैं ।

मंत्र—यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तंगच्छन्ति नामरूपे विहाय । तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥ ८ । ६१ ॥

शब्दार्थ—यथा=जैसे । नद्यः=नदी । स्यन्दमानः=बहते हुए । समुद्रे=समुद्र में । अस्तंगच्छन्ति=प्रविष्ट होकर अदृष्ट हो जाते हैं । नामरूपे=नाम और रूप । विहाय=त्याग कर अर्थात् जब नदी सागर में मिल जाती है, तब उनका नाम और रूप दोनों समाप्त हो जाते हैं । तथा=ऐसे ही । विद्वान=ज्ञानी पुरुष । नामरूपात=नाम रूप से । विमुक्तः=छुटकारा पाकर । परात्परं=सूक्ष्म से सूक्ष्म बड़े से बड़ा चेतन्य से चेतन्य । पुरुषम्=सर्वव्यापक परमात्मा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उपैति=प्राप्त होता है । दिव्यम्=प्रकाश स्वरूप को।

अर्थ—जिस प्रकार नदियां बहती हुई समुद्र में जाकर अपने नाम रूप को त्याग कर समाप्त हो जाती हैं, ऐसे ही विद्वान ज्ञानी पुरुष नाम रूप जो शरीर के हैं, जो उत्पन्न और नष्ट होने वाले हैं । इन सब से छूट कर अर्थात् शरीर के अहंकार से पृथक् होकर मन और इंद्रियों से सम्बन्ध छोड़ कर अपने भीतर रहने वाले परमात्मा को सूक्ष्म से सूक्ष्म बड़े से बड़ा ज्ञानी, धनी से धनी, सुखी से सुखी; निदान प्रत्येक गुण में जो अन्तिम सीमा है, जिससे किसी गुण में कोई समानता नहीं कर सकता बड़ा तो तब होता है, जब प्रकाश स्वरूप सब को प्रकाश करता है, इसको प्राप्त होता है ।

प्रयोजन यह है कि जब तक शरीर में अभिमान है, तब ही तक नाम रूप से सम्बंध है । क्योंकि सब नाम रूप इत्यादि जीव के नहीं, किंतु शरीर के हैं । शरीर के नाम रूप में अभिमान करना अविद्या है । तब तक दुख है, जब परमात्मा-ज्ञान से यह अविद्या मिट गई, तो बाहर की ओर दृष्टि-दूर हो जाने से, वृत्ति भीतर जाकर जो व्यापक परमात्मा है, उसको प्राप्त करती है ।

मंत्र—सयो हवै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रतिष्ठा करना यह व्रत वेदानुकूल हैं। यस्तु = जिससे। चीर्णम् = वह उस पर चल सकेगी।

अर्थ—यह उपदेश वेदों में भी कहा है। जो वेदानुकूल कर्म करने वाला है, जिसने वेद का पठन-पाठन सीखा हो और धर्म जानता हो जिसके चित्त में ब्रह्म जानने की पूर्ण इच्छा हो। अपनी इच्छा से वेदानुकूल होम करने वाला, श्रद्धा से जिज्ञासु मनुष्यों को इस ब्रह्मविद्या का उपदेश करे। जिसने तप से अंतःकरण शुद्ध किया। जिसका मन एकाग्र न हो, उनको उपदेश न करे जिनका व्रत यह हो कि वह कभी धर्म के कामों को न छोड़ेंगे और दूषित न करेंगे और उनको उपदेश देने से सफलता होती है। जो अधिकारी नहीं, उनको उपदेश करने से सफलता नहीं होती।

मन्त्र—तदेतत्सत्यमृषिराङ्गिराः पुरोवाच नैतद चीर्णव्रतोऽधीते। नमः परमऋषिभ्यो नमः परम ऋषिभ्यः ॥११।६४॥

शब्दार्थ—तत् = वह। एतत् = यह ब्रह्मविद्या। सत्यम् = जो तीन काल में रहता और रहने वाली है। ऋषि = वेद के ज्ञाता। अंगिरा = अंगिरा ऋषि ने। पुरोवाचः = पूर्व समय में उपदेश किया था। न = नहीं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एतद् चीर्णव्रतोऽधीते = यह ब्रह्म-विद्या नहीं पढ़ सकता। नमः परम ऋषिभ्यो = परमात्मा और वेद ज्ञानीको नमस्ते। नमः परमऋषिभ्यः = वेद के तत्व को जानने वालों को नमस्कार।

अर्थ—प्राचीन समय में यह ब्रह्मविद्या अंगिरा ऋषि ने ऋषियों को उपदेश की थी। और कहा था कि इस ब्रह्मविद्या को वह मनुष्य जिस ने व्रत के आचरण करने का नियम नहीं रक्खा, न पढ़े। क्योंकि जो अधिकारी नहीं, उस को लाभ नहीं हो सकता। रोगी को औषधि से लाभ हो सकता है, जो रोगी नहीं उस को औषधि हानिकारक है। अधिकार के बिना ब्रह्मविद्या लाभ नहीं दे सकती। अन्त में परमवेद के ज्ञाता ऋषियों को जिन्हों ने इस ब्रह्मविद्या का प्रचार किया, बार बार नमस्ते हो।

हिन्दी अनुवाद मुण्डकोपनिषद् का समाप्त हुआ।

ओ३म् शांतिः शांतिः शांतिः।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्त्री शिक्षा सम्बन्धी पुस्तकें।

गृह शिक्षक अर्थात् गृहस्थ सुधार ॥।), पुत्री शिक्षक अर्थात् माता का पुत्री को पतिव्रत धर्म व अन्य गृहस्थ सम्बन्धी उपदेश ॥), शिशु सुधार ॥), राधा १), लक्ष्मी ।), पतिव्रत धर्म =) पाकविधि ।), अबला भजन प्रकाश तीनों भाग ॥), स्त्री संगीत पुष्प माला ॥=), दुर्गा ।=), पुष्पा ।), वीर मातयें ।॥), सती वृत्तांत १॥), महिला जीवन ।≡), गृह प्रबन्ध ॥), बालक १) प्रेम धारा ॥।), नारी धर्म विचार पहला भाग ॥।), दूसरा भाग १॥), स्त्रीहितोपदेश॥=), पारिवारिक दृश्य ॥=), आर्ष पाठावलि सेठ विद्यावति बी० ए० आचार्य्या कन्या गुरुकुल लिखित सचित्र स्त्रियों और कन्याओं के लिये धर्म शिक्षा की अति उत्तम पुस्तक ॥), धर्मदेवी का उपदेश =), पुत्री उद्धारक =)॥ धर्मात्मा कन्या ॥=), घरका दरजी ।), नारायणी शिक्षा २), स्त्री सुबोधिनी २॥), सीता चरित्र १॥।), गर्भाधान विधिः ।), नारी रोग दर्पण ।=), मन्दालसा ।-), अञ्जना देवी ॥=), नल दम्यन्ती ॥), सीता बनवास ॥), चञ्चल कुमारी।=), धात्री विद्या ।=), नारी नीति शिक्षा ।), वनिता पत्र दर्पण ॥), जीवन रक्षा ॥।), सन्तति सुधार ॥), हिन्दू माता १), स्त्री शिक्षा धर्म वीर पं० लेखराम जी लिखित ।=), सीता देवी ॥=), हनुमान (अञ्जना) १॥) पद्मनी ॥।), राजस्थान की वीर रानियां १) भारत वर्ष की एक सुशीला और विदुषी स्त्री का शिक्षादायक जीवन ॥), सौरी सुधार १), सूतिका-गृह =), सुश्रुषा १), स्त्री चरित्र सङ्कठन ।=), भारत-महिला-मण्डल ।=) भारत की शुजाअव आलिम स्त्रियों के कारनामे ॥) विवाहित आनन्द १) विवाहित प्रेम १।॥) आदर्श पत्नि।॥) आदर्श पात ॥) पुत्रीउपदेश १)

पता—वैदिक पुस्तकालय मोहनलाल रोड़ लाहौर।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE